Pram IAS
Officers Making Officers

HINDI

ESSAY

Enrichment Programme

68th BPSC Mains

Collection of 25+ ESSAYS

Contact us
7250110904/05,7783879015

1.मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है लेकिन हर जगह वह जंजीरों में जकड़ा हुआ है

स्वतंत्रता और मुक्ति मानव जाति के लिए चिरस्थायी लालसा बनी हुई है। और इसलिए दासता एक सतत चुनौती बनी हुई है जिसे मानवता ने प्राचीन काल से दूर करने का प्रयास किया है। सभ्य इतिहास के प्रारंभ से ही मनुष्य ने अनेक आयामों की बेड़ियों से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास किया है। लेकिन 5000 से अधिक वर्षों के सभ्य इतिहास के बाद भी, "क्या हम वास्तव में स्वतंत्र हैं" यह प्रश्न बुद्धिजीवियों के बीच बहस का विषय बना हुआ है।

इस निबंध में हम उन विभिन्न तथ्यों पर एक नज़र डालेंगे जहाँ हम मानव समाज ने खुद को बंधनों से मुक्त किया है। इसके अलावा, हम उन बंधनों को भी देखेंगे जिनमें हम अब तक जकड़े हुए हैं। और अंत में हम यह आकलन करने की कोशिश करेंगे कि क्या हम सभी स्वतंत्र हैं।

आगे बढ़ने से पहले स्वतंत्रता और बंधन के अर्थ पर चर्चा करना उचित प्रतीत होता है। **स्वतंत्रता** का अर्थ है अपनी इच्छा के अनुसार होने और करने की क्षमता। इसके अनेक आयाम हैं। **राजनीतिक** रूप से इसका तात्पर्य अपनी इच्छा के अनुसार सरकार की स्वतंत्रता से है। **सामाजिक** रूप से इसे अपने मित्र, जीवनसाथी चुनने और बिना किसी भेदभाव के जीवन जीने की स्वतंत्रता के रूप में समझा जा सकता है। इसी तरह, **आर्थिक स्वतंत्रता** को अवसर की समानता और अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी पेशे को अपनाने की स्वतंत्रता के रूप में समझा जा सकता है।

हमारी स्वतंत्रता में कोई भी बाहरी बाधा बंधन है। **राजनीतिक** रूप से, यह विदेशी शासन या तानाशाही का आरोपण हो सकता है। सामाजिक रूप से, यह जन्म आधारित **सामाजिक** पदानुक्रम जैसे जाति या अन्य लोगों के बीच अंतर-जाति, अंतर-धर्म विवाह से जुड़े सामाजिक कलंक हो सकते हैं। आय और अवसर में असमानता और आर्थिक गतिविधियों के स्वामित्व के एकाधिकार आदि को आर्थिक बंधन माना जा सकता है।

इतिहास के पन्ने पलटते हुए हम मानव जाति की स्वतंत्रता की ओर आकर्षक यात्रा पा सकते हैं। विकास के शुरुआती दिनों में इंसान के लिए जीवित रहना सबसे बड़ी चुनौती थी। वह पूरी तरह से प्रकृति की दया पर निर्भर था। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने औजारों का विकास किया, खेती शुरू की और अंततः एक सभ्य जीवन की शुरुआत की।

इसके अलावा मनुष्य ने स्वयं को एक उच्च आध्यात्मिक धरातल पर धकेलने के लिए भी निरंतर प्रयास किए। इसके परिणामस्वरूप नैतिकता और धर्म का उदय हुआ।

आधुनिक समय में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता की खोज ने एक क्रांतिकारी गति पकड़ी। फ्रांसीसी क्रांति हो, अमेरिकी क्रांति हो या भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन - ये सभी अपने मूल उद्देश्यों के रूप में मुक्ति और मुक्ति पर केंद्रित थे।

हालाँकि, समकालीन समय में भी, बंधनों की उपस्थिति अभी भी बनी हुई है और दुनिया भर के लोग इन बेड़ियों से आज़ादी के संघर्ष में लगे हुए हैं।

उदाहरण के लिए, हम आत्मनिर्णय के अधिकार का उदाहरण लेते हैं। दुनिया भर में ऐसे कई क्षेत्र हैं जो राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए खूनी संघर्ष में लगे हुए हैं। **कुर्दिस्तान की मांग, बलूचिस्तान में अलगाव** आदि को इसके उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। इसी तरह, दुनिया भर में ऐसे कई उदाहरण हैं जहां लोगों को राजनीतिक रूप से सताया जाता है या उन्हें तानाशाही शासनों द्वारा जबरदस्ती शासित किया जा रहा है। उदाहरण के लिए - **चीन में उइगर मुस्लिम, श्रीलंका में तमिल, म्यांमार में रोहिंग्या** आदि।

सामाजिक क्षेत्र में भी दुनिया भर में अस्वतंत्रता के खिलाफ लोगों के कई संघर्ष चल रहे हैं। इनमें लैंगिक पूर्वाग्रहों के खिलाफ संघर्ष, LGBT समुदाय के अधिकारों के ज्ञान के लिए संघर्ष, जाति और धर्म आधारित भेदभाव के खिलाफ संघर्ष, लांछन और नफरत प्रमुख हैं।

यदि हम वैश्विक संदर्भ में बात करें तो आतंकवाद, बढ़ते प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और चल रहे युद्धों जैसे कई बंधनों का मूल कारण खंडित वैश्विक प्रतिक्रिया और राष्ट्रों के बीच राजनीतिक सहयोग का कमजोर होना हो सकता है।

इसके अतिरिक्त, बढ़ती आय असमानता, गरीबी, भुखमरी, बीमारियाँ और महामारी (जैसे कैंसर, एड्स, कोविड) और शिक्षा तक अपर्याप्त पहुँच स्वतंत्रता के अन्य रूप हैं जो मनुष्य को वास्तव में स्वतंत्र होने से रोक रहे हैं।

जंजीरों के उन प्रमुख रूपों पर चर्चा करने के बाद जिनमें मानवजाति अभी भी जकड़ी हुई है, आइए चर्चा करें कि आगे का रास्ता क्या होना चाहिए। इसमें शायद ही कोई संदेह हो कि सभी क्षेत्रों में व्यापक स्वतंत्रता की यात्रा जारी रहनी चाहिए। हालाँकि इसे सबसे कुशल तरीके से करने के लिए, कुछ चीजों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

सर्वप्रथम, लोगों की स्वतंत्रता की उस स्थिति के प्रति जागरूकता बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिसमें वे अनजाने में फंसे हुए हैं। उदाहरण के लिए दलितों और आदिवासियों के बीच अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के बारे में जागरूकता जाति या नस्ल आधारित भेदभाव के खिलाफ संघर्ष को आगे बढ़ाने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है। इसी प्रकार

कमजोर वर्ग के लिए सरकार की चल रही योजनाओं के बारे में जागरूकता का उपयोग गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी के मुद्दे से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए किया जा सकता है।

दूसरे, सभी स्तरों पर सहयोग - स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर प्रयासों को सक्रिय करने और तेजी से और प्रभावी सकारात्मक परिणाम लाने के लिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

इसके अलावा, हमारे मूल्य प्रणालियों के प्रति गतिशील और तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाने और सामाजिक चेतना विकसित करने से समाज को सभी जंजीरों को तोड़ने में लंबा रास्ता तय करना चाहिए। सबरीमाला मामले, नवतेज जौहर मामले आदि में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले इसका प्रमाण हैं।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वतंत्रता की खोज कभी न खत्म होने वाली खोज है। जैसे-जैसे सामाजिक चेतना विकसित होती है, इसका दायरा विस्तृत होता जाता है। वर्तमान समय में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असंख्य स्वतंत्रताएं मौजूद हैं। हर जगह जंजीरें देखी जा सकती हैं। हालांकि यह अनुमति का मामला नहीं है। वास्तव में यह मानव जाति के लिए एक कठिन आह्वान है कि वह इस अवसर पर खड़ा हो और जंजीरों को तोड़ने के लिए सब कुछ करे - हर जगह और हर जाति के लिए।

असतो मा सद्गमय ॥
तमसो मा ज्योतिर्गमय ॥
मृत्योर्मामृतम् गमय ॥

मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो।
मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो।
मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो॥

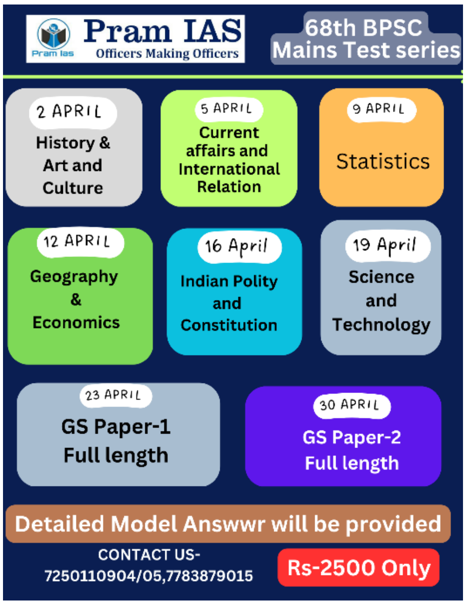

2.आदतें

कन्फ्यूशियस ने एक बार कहा था कि "मनुष्य का स्वभाव एक जैसा है; यह उनकी आदतें हैं जो उन्हें बहुत दूर ले जाती हैं। दूसरे संदर्भ में होरेस मान ने बताया कि "आदत एक केबल की तरह है; हम उसका एक धागा रोज बुनते हैं; और अंत में हम इसे तोड़ नहीं सकते।"

इस प्रकार यह बहुत स्पष्ट है कि आदतें हमारे स्वभाव का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे हमारे चरित्र को परिभाषित करते हैं और इस प्रकार हमारे भाग्य को आकार देते हैं।

इस निबंध में हम आदतों के अर्थ पर गौर करेंगे कि वे कैसे बनती हैं। साथ ही, हम कुछ अच्छी आदतों पर भी गौर करेंगे, जिन्हें हमें कुछ बुरी आदतों में शामिल करने का प्रयास करना चाहिए, जिनसे हमें दूर रहना चाहिए।
आदतों को उन क्रियाओं और व्यवहार के पैटर्न के रूप में समझा जा सकता है जो हमारे द्वारा इतनी बार की जाती हैं कि हम इसे बार-बार करने के लिए इच्छुक होते हैं। उदाहरण के लिए हममें से कुछ लोगों को खाली समय में संगीत सुनने की आदत होती है। और इसलिए जब भी हमें फुरसत मिलती है तो हम संगीत बजाना शुरू कर देते हैं।

इसी तरह, कुछ लोगों को किताबें पढ़ने या लंबी सैर करने की आदत विकसित हो जाती है। ये आदतें धीरे-धीरे उनकी दिनचर्या का हिस्सा बन जाती हैं और अंततः हमारे स्वभाव और चरित्र की पहचान बन जाती हैं।
आदतों के निर्माण के प्रश्न पर विचार करते हुए, मनोवैज्ञानिकों ने कुछ कारकों पर प्रकाश डाला है जो सक्षम भूमिका निभाते हैं और आदत निर्माण को उत्प्रेरित करते हैं। ऐसा ही एक कारक बचपन की परवरिश है। वे आदतें - चाहे अच्छी हों या बुरी, जो कम उम्र में सीख ली जाती हैं, जीवन भर हमारे साथ रहती हैं और जिन्हें छोड़ना मुश्किल होता है। इसलिए माता-पिता को हमेशा यह सलाह दी जाती है कि वे यह सुनिश्चित करें कि उनके बच्चे सही आदतों का विकास करें।

बचपन के पालन-पोषण के अलावा, हमारा हमउम्र समूह भी आदत बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम जिनके सान्निध्य में रहते हैं, उन लोगों के व्यवहार संबंधी गुणों को प्राप्त करना बहुत स्वाभाविक है।

अगर हमारे मित्र मंडली और सहकर्मी किताबें पढ़ने के इच्छुक हैं तो इस बात की पूरी संभावना है कि किताब पढ़ने की आदत हममें भी आ जाएगी। और दूसरी ओर, यदि हम धूम्रपान करने वालों और शराबियों की संगति में हैं, तो ये विकार हमें समय के साथ प्राप्त हो सकते हैं।

आदत बनाने में मदद करने वाले अन्य कारकों में सामाजिक मानदंड, धार्मिक विश्वास, हमारे माता-पिता की आदतें, हमारा पड़ोस, हमारे शैक्षणिक संस्थान, शैक्षणिक पाठ्यक्रम आदि शामिल हैं। जापान में, खुद के काम करना मूल्य प्रणाली का हिस्सा है। बच्चे अपने माता-पिता को देखते हैं और उन्हें स्कूलों में भी सिखाया जाता है कि वे अपना काम खुद करें और स्वाभाविक रूप से यह उनकी आदत बन जाती है और अगली पीढ़ी को दे दी जाती है। इसी तरह जापानी स्कूलों में प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर रहना सिखाया जाता है। स्कूलों में किचन गार्डन हैं जहां बच्चे बागवानी करते हैं। धीरे-धीरे प्रकृति की देखभाल उनकी आदत बन जाती है।

भारतीय संस्कृति में भी आदत निर्माण को उचित महत्व दिया गया है। शुरुआती दिनों में, बच्चों को गुरुकुलों में भेजा जाता था जहाँ उन्होंने गुरु-शिष्य परम्परा के तहत धर्मी जीवन जीने का पाठ सीखा और ब्रह्मचर्य के आचरण का पालन किया। धीरे-धीरे सादा जीवन, बड़ों का सम्मान आदि उनके चरित्र का अंग बन जाएगा।

इस प्रकार आदत निर्माण की प्रक्रिया पर चर्चा करने के बाद आइए हम तीन अच्छी आदतों पर चर्चा करें जिन्हें हमें प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए और तीन बुरी आदतों के बारे में जिनसे हमें बचना चाहिए।

विभिन्न वांछनीय आदतों में पुस्तक पठन को व्यापक रूप से सराहा जाता है। पुस्तक पढ़ने से हमें अपने ज्ञान धन को बढ़ाने में मदद मिलती है। यह हमें लगातार विकसित होने के अवसर प्रदान करता है - व्यक्तित्व के अनुसार और चरित्र के अनुसार। किताबों की कंपनी शायद सबसे अच्छी और सबसे भरोसेमंद कंपनी है। कहा जाता है कि एक अच्छी किताब 10 अच्छे दोस्तों के बराबर होती है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकांश महापुरुषों में पुस्तक पढ़ना उनमें पायी जाने वाली एक सामान्य आदत है। चाहे वह महात्मा गांधी हों या बेंजामिन फ्रैंकलिन या वारेन बफेट - वे सभी विपुल पाठक थे।

किताब पढ़ने के अलावा मॉर्निंग वॉक एक और अच्छी आदत है। नियमित रूप से रोजाना टहलना न केवल हमारे शरीर को फिट रखने में मदद करता है बल्कि ये हमारे दिमाग को शांत रखने में भी काफी मददगार होते हैं। आधुनिक समय में जब मोटापा और अवसाद अधिक से अधिक प्रचलित हो रहे हैं, रोजाना आधे घंटे की सैर की आदत चमत्कार कर सकती है।

इसी तरह, धन्यवाद कहने की एक छोटी सी आदत बहुत उपयोगी और महत्वपूर्ण हो सकती है। अगर हम दूसरों को प्राप्त होने वाले छोटे-छोटे एहसानों के लिए धन्यवाद देते हैं तो यह उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने का एक बहुत प्रभावी तरीका हो सकता है। यह दूसरों को भी विशेष और महत्वपूर्ण महसूस कराता है। यह बहुत स्वाभाविक है कि सच्चा धन्यवाद प्यार, वफादारी और दया वापस लाता है। ऐसा कहा जाता है कि समय पर कहा गया धन्यवाद और समय पर कहा गया सॉरी अनगिनत झगड़ों, गलतफहमी और रिश्ते की विफलताओं को रोक सकता है।

कुछ अच्छी आदतों के बारे में चर्चा करने के बाद आइए कुछ बुरी आदतों के बारे में भी चर्चा करें जिनसे हमें दूरी बनाए रखनी चाहिए।
आमतौर पर देखा गया है कि लोग बेहद साधारण और गैर-संवेदनशील मामलों में भी झूठ बोलते हैं। उदाहरण के लिए कॉलेज में छात्रावास जीवन के दौरान छात्र अपने माता-पिता से झूठ बोलते हैं कि उन्होंने नाश्ता किया है। सच कहते तो शायद ही कोई गंभीर परिणाम सामने आता, इसी तरह अफसरों में कई बार हम देर से आने का झूठा बहाना बना देते हैं। हालांकि ये झूठ स्पष्ट रूप से हानिरहित दिखते हैं, लेकिन ये वास्तव में जवाबदेही से बचने के लिए सच्चाई को छिपाने की प्रवृत्ति पैदा करते हैं। इसके अलावा यह इच्छा शक्ति को कमजोर करता है और चरित्र पर सेंध लगाता है। इसलिए हमें जहां तक हो सके सच बोलने की कोशिश करनी चाहिए।

प्रोक्रैस्टिनेशन एक और बुरी आदत है। कई बार हम बेवजह चीजों को कल के लिए टाल देते हैं। यह हमारे लंबित कार्यों को संचित करता है और हमारे समग्र प्रदर्शन को प्रभावित करता है। ठीक ही कहा गया है कि "काल करे सो आज कर, आज करे सो अब" (जो कल करना है उसे आज करो और जो आज करना है उसे मत करो)। इसलिए हम शिथिलता का दुरुपयोग करते हैं और समय की पाबंदी की आदत डालते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी आदतें प्रमुख कारक हैं जो हमारे स्वभाव, चरित्र और नियति को आकार देती हैं। जहाँ अच्छी आदतें हमें अपने जीवन में सफल होने में मदद करती हैं, वहीं दूसरी ओर बुरी आदतें किसी के भाग्य को बर्बाद करने के लिए काफी शक्तिशाली होती हैं। इसलिए हमें हमेशा अपनी आदतों के प्रति सतर्क रहना चाहिए। साथ ही हमें लगातार अच्छी आदतें बनाने का प्रयास करना चाहिए और उन्हें एक तरफ बनाए रखना चाहिए और बुरी आदत को हासिल करने से बचना चाहिए और अगर कोई है तो उसे खोने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए।

3.अनुशासन का महत्व

दलाई लामा कहते हैं, "एक अनुशासित मन खुशी की ओर ले जाता है; और एक अनुशासनहीन मन दुख की ओर ले जाता है"। इसी तर्ज पर, जिम रोहन कहते हैं, "अनुशासन लक्ष्य और उपलब्धि के बीच का सेतु है"। दूसरे संदर्भ में, वॉरेन बफेट ने एक बार कहा था कि हमें बाकी लोगों से ज्यादा स्मार्ट होने की जरूरत नहीं है; हमें बाकियों से अधिक अनुशासित होना होगा।

उपरोक्त सभी उद्धरण हमारे जीवन में अनुशासन के अत्यधिक महत्व को उजागर करते हैं। इस निबंध में, हम अनुशासन के अर्थ और जीवन के विभिन्न आयामों में इसके महत्व का पता लगाने का प्रयास करेंगे। इसके अलावा, हम कुछ ऐसे तरीकों पर चर्चा करेंगे जिनसे अनुशासन विकसित किया जा सकता है।

अनुशासन का अर्थ है अपने मन और शरीर को इस तरह प्रशिक्षित करने का अभ्यास कि हमारे कार्य और व्यवहार नियंत्रित और विनियमित हों और नियमों और व्यवस्था के अनुसार हों। अनुशासन का मतलब व्यक्तिगत स्वतंत्रता की उपेक्षा नहीं है। साथ ही इसका अर्थ दूसरों के प्रति स्वयं की अधीनता भी नहीं है। वस्तुतः यह अपने आप में संयम और आत्मसंयम का ही व्यवहारिक रूप है।

अनुशासन का महत्व सर्वोपरि है। यह समाज और हमारे जीवन में एक व्यवस्था लाता है। अनुशासन के बिना हमारा जीवन और समाज अस्त-व्यस्त हो जाएगा और एक सभ्यता को पशु साम्राज्य से अलग करना मुश्किल होगा। वास्तव में अनुशासन ही पूरे ब्रह्मांड का आधार है। यदि हम माँ प्रकृति का निरीक्षण करें तो उसमें अनुशासन का तत्व स्पष्ट रूप से पाया जा सकता है। सूर्य और ग्रहों की गति, ऋतुओं का परिवर्तन, नदी का प्रवाह - सभी अनुशासन प्रदर्शित करते हैं।

हमारे व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन चरित्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह हमें अच्छी आदतें डालने में मदद करता है। हमारी इच्छा शक्ति को बढ़ाता है और हमें अपने लक्ष्यों को निरंतरता के साथ आगे बढ़ाने में मदद करता है। जब हम अपने दैनिक जीवन में अनुशासन का अभ्यास करते हैं तो हमारी क्षमताओं और क्षमताओं का सबसे अच्छा पोषण और वास्तविकीकरण होता है।

मन की शांति और आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त करने के लिए भी अनुशासन को केंद्रीय विशेषता के रूप में स्वीकार किया गया है। बुद्ध की शिक्षाओं में विधिवत परिलक्षित हुआ है। दुखों से बचने के उनके अष्टांग मार्गों में से एक है सम्यक आचरण अर्थात सही आचरण।

अपने व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन के अभाव में, इस बात की बहुत संभावना है कि हम शराब, टालमटोल आदि जैसी बुरी आदतों के शिकार हो सकते हैं। इसके अलावा, अनुशासन से रहित व्यक्ति अवसाद और चिंता जैसे मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है।

प्रोफेशनल लाइफ की बात करें तो वहां भी अनुशासन की बड़ी भूमिका होती है। एक संगठन जहां कर्मचारी अच्छी तरह से अनुशासित होते हैं, ऐसे संगठन की दक्षता दूसरों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक होती है। साथ ही वहां आंतरिक कलह और गुटबाजी की राजनीति की संभावना भी काफी कम है। इसके अलावा वहां काम करने वाले कर्मचारियों की नौकरी से संतुष्टि भी काफी अधिक है और टीम वर्क प्रचलित है।

इसी प्रकार एक समाज या एक राष्ट्र के लिए उसकी महानता के लिए अनुशासन आवश्यक घटक है। जापान इसका एक अच्छा उदाहरण है। जापान के लोग अक्सर अपने अत्यधिक अनुशासित स्वभाव के लिए जाने जाते हैं। इसने जापान को एक सामंजस्यपूर्ण समाज के रूप में विकसित होने में बहुत मदद की है। इसके अलावा, इसने इसे विकसित अर्थव्यवस्था के साथ एक उन्नत राष्ट्र के रूप में उभरने में एक से अधिक तरीकों से मदद की है। द्वितीय विश्व युद्ध के विनाश के बाद जापान द्वारा की गई उल्लेखनीय पुनर्प्राप्ति और प्रगति बिना अनुशासन के संभव नहीं हो सकती थी।

दूसरी ओर, इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ अनुशासन की उपस्थिति के अभाव में समाज और राष्ट्र पतित और पतनशील हुए हैं। स्पार्टा के हाथों एथेंस की हार को एथेंस में अनुशासित और बढ़ती अराजकता की कमी से बहुत मदद मिली।

इसी प्रकार राजनीतिक जीवन के क्षेत्र में अनुशासन अत्यंत प्रशंसनीय और अत्यधिक वांछनीय गुण है। यह राजनीतिक स्थिरता की सुविधा में मदद करता है और दूसरी ओर राष्ट्र निर्माण बलों का समर्थन करता है। इतिहास के साथ-साथ वर्तमान समय में भी कई प्रमाण मौजूद हैं जहां राजनीतिक नेतृत्व द्वारा प्रदर्शित अनुशासन की कमी के कारण कई अवांछनीय परिणाम सामने आए हैं। जबकि दूसरी ओर ऐसे साक्ष्य मौजूद हैं जहां एक अनुशासित राजनीतिक नेतृत्व ने ऐतिहासिक स्थलों को हासिल किया है।

उदाहरण के लिए मुगलों के पतन के मामले को ही लें। राजाओं (विशेष रूप से औरंगज़ेब के बाद) और कुलीनों की ओर से अनुशासन की कमी ने राजनीतिक अराजकता, अस्थिरता और निर्वात पैदा कर दिया। इसने अंग्रेजों को धीरे-धीरे राजनीतिक सत्ता हासिल करने में सक्षम बनाया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः मुट्ठी भर अंग्रेजों द्वारा पूरे भारतीयों का उपनिवेशीकरण किया गया।

इसके विपरीत, महात्मा गांधी और उनके अनुयायियों द्वारा आत्म-अनुशासन के असाधारण प्रदर्शन ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को लगातार बढ़ने और मजबूत होने में मदद की। अंततः इसका

परिणाम दुनिया की तत्कालीन शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति से स्वतंत्रता प्राप्त करने में हुआ।

यदि हम वर्तमान समय पर विचार करें तो हम ऐसे कई उदाहरण देख सकते हैं जहां अनुशासन की सख्त आवश्यकता है। उदाहरण के लिए उचित अनुशासन के अभाव में दुनिया भर के युवा नैतिकता के संकट का सामना कर रहे हैं। शराब, तंबाकू और नशीली दवाओं के दुरुपयोग में दुर्भाग्यपूर्ण वृद्धि हुई है।

इसी तरह, महिलाओं, बुजुर्गों के प्रति अनादर की घटनाओं को अनुशासन की कमी के कारण खोजा जा सकता है। इसके अलावा, समाज कानून और व्यवस्था की समस्या के लिए अग्रणी कानून का पालन नहीं कर रहा है। बढ़ती सड़क दुर्घटनाओं को अनुशासनहीनता से गाड़ी चलाने से जोड़ा जा सकता है और इसी तरह हम बढ़ते भ्रष्टाचार को सरकारी अधिकारियों में अनुशासन की कमी से जोड़ सकते हैं।

अनुशासन के महत्व और इसके न होने के परिणामों पर चर्चा करने के बाद, आइए कुछ ऐसे कारकों पर चर्चा करें जो अनुशासन की खेती में मदद करते हैं और इसलिए इसे बढ़ावा दिया जाता है।

अनुशासन विकसित करने के लिए, प्रारंभिक बचपन की देखभाल का बहुत महत्व है। घर बच्चों की पहली पाठशाला होता है। यदि माता-पिता अनुशासन प्रदर्शित करते हैं, तो बच्चे भी अपने जीवन में अपनाने की सबसे अधिक संभावना रखते हैं। इसलिए माता-पिता को स्वयं अपने बच्चों के लिए रोल मॉडल के रूप में कार्य करना चाहिए और एक अनुशासित जीवन जीना चाहिए।

इसी तरह, स्कूल के माहौल और पाठ्यक्रम को अनुशासित जीवन को बढ़ावा देना चाहिए। शिक्षकों को केवल पढ़ाना ही नहीं बल्कि स्वयं एक अनुशासित व्यक्ति का उदाहरण बनकर दिखाना चाहिए।

तीसरा, समग्र रूप से समाज को अनुशासन के मूल्य को बढ़ावा देना चाहिए और उसकी सराहना करनी चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि समाज में मनाई जाने वाली मूल्य प्रणाली लोगों को उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित करती है।
और अंत में राष्ट्र के राजनीतिक नेतृत्व को अनुशासन का अभ्यास करके और ईमानदारी दिखाकर उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। जैसा नेता होता है वैसा ही आम आदमी होता है।
यदि अन्य कारकों के साथ इन पर उचित ध्यान दिया जाता है तो यह बहुत संभव है कि पूरा देश और वर्तमान और आने वाली पीढ़ी अनुशासन को अपने मूल मूल्यों के रूप में महत्व देगी और उनका अनुकरण करेगी।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति, समूह, समाज या राष्ट्र की नियति को आकार देने और बनाने में अनुशासन का सर्वोपरि महत्व है।

4.बिहार - भारत का सांस्कृतिक आकर्षण का केंद्र

मानव समाज की सभ्यता यात्रा में बिहार का विशिष्ट स्थान है। ज्ञात इतिहास के बड़े हिस्से के लिए और प्रागैतिहासिक काल के दौरान भी, बिहार ने सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मिथिला के राजा जनक हों या बुद्ध या महावीर या अशोक या आर्यभट्ट - बिहार के व्यक्तित्वों ने सदियों से बौद्धिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक क्षेत्र को रोशन किया है।

इस निबंध में, हम बिहार के विभिन्न मील के पत्थर का पता लगाने की कोशिश करेंगे जो इसे भारत का सांस्कृतिक आकर्षण का केंद्र बनाता है। साथ ही, हम गिरावट के कुछ दुर्भाग्यपूर्ण संकेतों और उन तरीकों को देखने की कोशिश करेंगे जिनके माध्यम से बिहार के पुनरुत्थान को स्थिर किया जा सकता है।

पूर्व-ऐतिहासिक काल के दौरान, बिहार उन गिने-चुने क्षेत्रों में से था, जहाँ आदि मानव ने अपनी बस्तियाँ बसाईं। चिरांद इस संबंध में एक बहुत ही उल्लेखनीय स्थल है। यहाँ से प्राप्त खाद्यान्नों और अस्थि-पत्थर की शिल्पकृतियों के प्रमाण नवपाषाण काल के हैं। यदि प्रारंभिक वैदिक काल की बात करें तो ऋग्वेद में बिहार का उल्लेख किकट के रूप में मिलता है। इसी तरह के संदर्भ शतपथ ब्राह्मण जैसे वैदिक ग्रंथों में पाए जा सकते हैं।

उत्तर वैदिक काल के दौरान, मिथिला के राजा जनक के अधीन बिहार पूरे उत्तर भारत के सांस्कृतिक केंद्र के रूप में उभरा। राजा जनक के संरक्षण में गहन दार्शनिक प्रवचन हुए। कई उपनिषद, अष्टावक्र गीता, गार्गी संहिता आदि इस दौरान संकलित हुए। इन ग्रंथों में उठाए गए आध्यात्मिक प्रश्न अभी भी प्रासंगिक हैं और इसलिए वे हिंदू बौद्धिक समझ का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

महाजनपद के दौर में भी बिहार उन राजनीतिक और सांस्कृतिक नवीनताओं में सबसे आगे रहा, जो उस दौरान प्रयोगात्मक हो रहे थे।
उस काल में एक ओर मगध में बिंबिसार और अजातशत्रु जैसे राजाओं के अधीन शक्तिशाली राजतंत्र की स्थापना हो रही थी और दूसरी ओर वज्जि क्षेत्र में एक गणतंत्र राज्य की नींव रखी जा रही थी।

इतना ही नहीं, इस दौरान बिहार की बौद्धिक शक्तियाँ भी काफी उल्लेखनीय हैं। यह बिहार की भूमि थी जहां बुद्ध और महावीर जैसे बुद्धिजीवियों ने ज्ञान प्राप्त किया और जीवन जीने का सही मार्ग सुझाया। उनकी शिक्षाएं आज केवल बिहार या भारत तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, चीन और जापान में

बौद्ध धर्म का प्रसार मानव जाति के सांस्कृतिक विकास में बिहार के बौद्धिक योगदान का प्रमाण है।

जैसे-जैसे हम इतिहास में आगे बढ़ते हैं, हमें चंद्रगुप्त मौर्य और महान अशोक जैसे शासकों का सामना करना पड़ता है। उनके जैसा राजा कहीं और मिलना मुश्किल है। जहां चंद्रगुप्त मौर्य ने पहली बार एक अखिल भारतीय साम्राज्य की नींव रखी तो दूसरी ओर अशोक ने धम्मघोष को सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक रणनीति के रूप में लोकप्रिय बनाया। कौटिल्य जैसे व्यक्तित्वों का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिन्हें बिहार ने इस समय उत्पन्न किया। यह कौटिल्य ही थे जिन्होंने मैकियावेली से बहुत पहले शासन कला पर एक व्यवस्थित ग्रंथ दिया था।

बिहार में मौर्य और उत्तर मौर्य युग के दौरान कला और संस्कृति का बहुत विकास हुआ। लौरिया नंदनगढ़ और लौरिया अरराज के स्तंभ, दीदारगंज से यक्षिणी मूर्तिकला और कुम्हरार शाही महलों के अवशेष बिहार की कलात्मक प्रगति को स्पष्ट रूप से बताते हैं।

मौर्य चरण के बाद, गुप्त काल भी काफी उज्ज्वल है और इस चरण के दौरान बिहार का सांस्कृतिक योगदान काफी उल्लेखनीय था। इस दौरान बिहार ने न केवल आध्यात्मिक और कलात्मक चमत्कारों का उत्पादन किया, बल्कि विज्ञान प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी बड़ी प्रगति की और सीखने की सीट के रूप में उभरा। आर्यभट्ट, वराहमिहिर की रचनाओं ने खगोल विज्ञान, गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में काफी प्रगति की। इसी प्रकार विशाखादत्त, चूद्रक की रचनाओं ने साहित्य को समृद्ध किया। इसके अलावा, बिहार ने गुप्त काल के दौरान और बाद में पाल काल के दौरान मूर्तिकला और स्थापत्य चमत्कारों का उत्पादन जारी रखा।

यदि हम बिहार में शिक्षा के विकास की बात करें तो प्राचीन भारत में इसकी एक लंबी और समृद्ध परंपरा रही है। वैदिक काल में, मिथिला सीखने की सीट थी। बाद में गुप्त काल में नालंदा सबसे बड़े शिक्षा केंद्र के रूप में उभरा। नालंदा में न केवल भारत से अपितु विश्व के दूर-दराज के क्षेत्रों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। और पाल युग के दौरान, विक्रमशिला और ओदंतपुरी शिक्षा के केंद्र के रूप में उभरे।

मध्यकाल में विदेशी आक्रमणों के माध्यम से राजनीतिक स्थिरता और सांस्कृतिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा, फिर भी बिहार अपनी चमक बरकरार रखने में कामयाब रहा। कर्नाटक राजवंश के तहत मिथिला संस्कृति का उदय, विद्यापति की साहित्यिक उपलब्धियाँ मध्यकालीन युग के दौरान बिहार के उल्लेखनीय तथ्य थे।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, बिहार समकालिक हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के एक महान क्षेत्र के रूप में उभरा, जिसे आमतौर पर गंगा जमुना तहजीब कहा जाता है। एक ओर यह भक्ति आन्दोलनों के प्रभाव में आया और दूसरी ओर यह सूफीवाद के एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा। पटना, बिहारशरीफ जैसे स्थानों में ख्वाजा मखदूम शाह मनेरी और अन्य सूफी संतों की दरगाह मध्ययुगीन काल के दौरान प्रमुख धार्मिक केंद्र के रूप में उभरी।

16वीं शताब्दी तक, अफगान शासकों द्वारा बिहार की संस्कृति को काफी समृद्ध किया गया था। इनमें शेरशाह सबसे प्रमुख था। उसने हुमायूँ को पराजित कर न केवल दिल्ली की गद्दी प्राप्त की अपितु राजनीतिक एवं सामाजिक ढाँचे में प्रगति लाने का भी प्रयास किया। यह उनका राजस्व संग्रह मॉडल हो, धर्मनिरपेक्ष प्रशासन और रोहतास के अफगान वास्तुकला - सभी उल्लेखनीय उपलब्धियां हैं।

यदि हम शैक्षिक प्रगति की बात करें तो बिहार में भी कई आकर्षक घटनाक्रम हुए हैं। बिहारशरीफ, रोहतास और बाद में पटना फ़ारसी अध्ययन के प्रमुख शिक्षण केंद्र के रूप में उभरे।
बिहार के आम लोगों द्वारा की गई सांस्कृतिक प्रगति भी कम नहीं है। वैदिक काल में बिहार में हिंदू धर्म का विकास हुआ, बाद में बिहार के लोगों द्वारा बौद्ध और जैन धर्म को स्वीकार किया गया। और जैसे-जैसे समय बीता बिहार के लोगों ने वैष्णववाद, शक्तिवाद, प्रकृति पूजा और सूफीवाद को अपनाया और समृद्ध किया।

हालाँकि बाद के मुगलों के समय तक या बिहार की सांस्कृतिक प्रगति पटना कलाम के उल्लेखनीय अपवाद के रूप में स्थिर हो गई। ब्रिटिश शासन के दौरान स्थिति में और गिरावट आई जिसके कारण बिहार की सामान्य गरीबी हुई। आजादी के बाद भी बिहार की आर्थिक प्रगति में अपेक्षित गति नहीं आई। 20वीं सदी की शुरुआत के बाद ही बिहार फिर से अपने पुनरुत्थान की ओर बढ़ा।

नालंदा विश्वविद्यालय के पुनर्निर्माण, बिहार में बोधगया, रामायण, बौद्ध और सूफी सर्किटों के विकास के लिए सरकार का हालिया कदम स्वागत योग्य कदम है। हालांकि अभी और किए जाने की जरूरत है।

इस संबंध में सबसे पहले बिहार के लोगों का आर्थिक सशक्तिकरण हो सकता है। इसके साथ ही, शिक्षा का प्रसार और लोगों को समृद्ध और विशाल सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराना अगला कार्य हो सकता है। इसके लिए सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, अनिवासी बिहारी सहित अन्य से अधिक धन की आवश्यकता होगी। इसके अलावा भारत और विदेशों (जैसे मॉरीशस, फिजी आदि) में बिहारी संस्कृति का उत्साहपूर्ण प्रचार भी किया जाना चाहिए।
इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बिहार हमेशा भारत के सांस्कृतिक विकास का ध्रुवतारा रहा है। जरूरत अज्ञानता, गरीबी

और शिक्षा की कमी के बादल को हटाने की है। इसका प्रकाश मानव जाति को प्रकाशित करता रहे, इसके लिए हमें आगे आकर समर्पित प्रयास करने चाहिए।

5.सत्यमेव जयते

सत्य मानव जाति के सर्वोच्च गुणों में से एक है। शास्त्रों और सार्वजनिक क्षेत्र के महान नेताओं दोनों ने व्यक्ति के विकास और एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए सत्य के महत्व को स्वीकार किया है।
हालाँकि, आजकल यह देखा जा सकता है कि सत्य के गुण के संबंध में सामान्य गिरावट आई है। इसके कई अवांछित परिणाम भी हुए हैं।

इस निबंध में, हम सत्य के विभिन्न आयामों पर गौर करेंगे। साथ ही, हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि व्यक्ति को व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में सत्य के गुण का पालन क्यों करना चाहिए। इसके अलावा, हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि सत्यता के पालन में गिरावट क्यों आई है और इसके अभ्यास को फिर से लागू करने के लिए क्या किया जाना चाहिए। अंत में, हम वर्तमान समय की सबसे अधिक दबाव वाली चुनौतियों में से कुछ को हल करने में सत्य की प्रासंगिकता का पता लगाने का प्रयास करेंगे।

सत्य सभी गुणों का गुण है। पश्चिमी और भारतीय दोनों परंपराओं में इसे समान रूप से महिमामंडित किया गया है। यह सभी अच्छे गुणों और नैतिक मूल्यों का योग है। सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, सहानुभूति, बहादुरी, समर्पण, ध्यान आदि जैसे कई अन्य गुण सत्य के गुण से प्रवाहित होते हैं।

महात्मा गांधी के अनुसार सत्य और ईश्वर एक ही हैं। उनके अपने शब्दों में, वह सत्य के अलावा किसी अन्य ईश्वर को नहीं पहचानते। इसी प्रकार उपनिषदों के ज्ञान ने सत्य का महिमामंडन किया है। मुण्डकोपनिषद के अनुसार "सत्यमेव जयते" अर्थात सत्य की ही विजय होती है।

भगवान बुद्ध और भगवान महावीर ने भी अपने-अपने उपदेशों में सत्य पर विशेष बल दिया है। भगवान बुद्ध ने इसे अपने अष्टांगिक मार्ग का अभिन्न अंग बनाया है। इसी प्रकार भगवान महावीर ने इसे पंच महाव्रतों का अंग बनाया है।

पश्चिमी परंपरा में, सत्य को प्राचीन यूनानियों और ईसाई धर्म द्वारा उच्च सम्मान में रखा गया है। पुरातन काल से प्राचीन सोफिस्टों ने एक आदर्श जीवन जीने के लिए सत्य के अभ्यास को स्वीकार किया है। इसी प्रकार सुकरात और प्लेटो ने इसे प्रमुख महत्व दिया है। सुकरात कहा करते थे, "सत्ता के सामने सच बोलो"। उन्होंने जहर भी स्वीकार किया लेकिन अपने सत्य के मार्ग से विचलित होना स्वीकार नहीं किया।

ऐसे एक से अधिक कारण हैं जिनके लिए व्यक्ति को अपने दैनिक आचरण में सत्य का पालन करना चाहिए। व्यक्तिगत स्तर पर यह व्यक्ति के आत्म-सम्मान को बढ़ाता है, उसमें बहादुरी पैदा करता है और उसकी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी को बढ़ाता है।

जब मनुष्य सत्य बोलता है और सत्य आचरण करता है, तो धर्मी प्रारब्ध स्वत: ही उसका बन जाता है। जब समाज में सभी सत्य बोलते हैं और सत्य आचरण का पालन करते हैं, तो सद्भाव, शांति, प्रगति और सांस्कृतिक उत्थान होता है। यह अंततः राष्ट्र में, राष्ट्रों के बीच और पूरे विश्व में सामान्य शांति, प्रगति और सद्भाव लाता है।
परन्तु दूसरी ओर यदि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सत्य के मार्ग से भटक जाते हैं तो अनेक दोष भी उसी प्रकार अनुगमन करते हैं।

यदि हम निजी जीवन में सत्य के गुण को त्यागने के परिणामों के बारे में बात करें, तो हम पा सकते हैं कि यह आत्मविश्वास और आत्म-संतुष्टि के कमजोर होने की ओर ले जाता है। इसके अलावा, यह दूसरों के बीच चोरी, कायरता, विश्वास की कमी जैसे दोषों को जन्म देता है। यहां तक कि इसके कारण व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति भी बहुत खतरे में पड़ जाती है। वास्तव में विश्व के अधिकांश महान धर्मों ने सत्य को मुक्ति और जीवन में सत्य के अभाव को बंधन माना है।

इसी प्रकार सार्वजनिक जीवन में सत्य एक आदर्श समाज की रीढ़ होता है। इसके अभाव में, भाईचारे में कमी आती है, हठधर्मिता मजबूत होती है और मानवाधिकारों का हनन अधिक होता है। सार्वजनिक जीवन की सबसे जटिल चुनौतियों में से एक भ्रष्टाचार है। यह भ्रष्टाचार भी कुछ नहीं बल्कि सार्वजनिक जीवन में असत्य आचरण का प्रकटीकरण है।

इतिहास भी हमें सत्य के महत्व के बारे में एक महान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। ऐसे कई मौके आए हैं जब सच्चाई पर चलना चमत्कार में परिणित हुआ है। इसी तरह ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहां सच्चाई का रास्ता छोड़ने का परिणाम असफलता के रूप में सामने आया हो।

आइए बुद्ध का उदाहरण लें। यह केवल सत्य की शक्ति थी जिसने उनके आत्म-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त किया और उन्हें एक साधारण राजकुमार से एक प्रबुद्ध व्यक्ति में बदल दिया। इसी तरह सत्य के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता ने मोहन दास करम चंद गांधी को महात्मा गांधी बना दिया।

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन इस बात का एक और आकर्षक उदाहरण है कि इस आंदोलन का चरण सत्य के आधार पर कैसे आधारित था। उनका सत्याग्रह राजनीतिक जीवन में सत्य की

अभिव्यक्ति था। यह अंततः भारत की स्वतंत्रता लेकर आया - एक ऐसा कारनामा जो इस दुनिया में खोजने के लिए दुर्लभ है।

दूसरी ओर हम पा सकते हैं कि कई महान राष्ट्रों और सभ्यताओं का पतन सत्य के मार्ग को छोड़ने का परिणाम था। जर्मनी में फासीवाद का उदय इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

पूरा फासीवाद एक नकली आख्यान की अभिव्यक्ति पर आधारित था। इससे हिटलर जैसे तानाशाह का उदय हुआ। हिटलर की नीतियों ने न केवल लाखों यहूदियों को मार डाला, बल्कि द्वितीय विश्व युद्ध भी हुआ जो मानव इतिहास में अब तक का सबसे विनाशकारी युद्ध था।

सत्य के संबंध में इन व्यापक रूप से स्वीकृत तर्कों के बावजूद, सत्य आचरण के अभ्यास में सामान्य गिरावट आई है। इसके लिए कई कारकों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

कम प्रयास में कम समय में सफलता प्राप्त करने की मानवीय प्रवृत्ति उनमें से एक है। इसी तरह सफलता समाज की गलत धारणा एक और कारण है। आज, अधिकांश लोग सफलता की तुलना व्यक्ति की धार्मिकता से नहीं बल्कि धन और शक्ति की वृद्धि से करते हैं। इसके अलावा कट्टरता, उग्र राष्ट्रवाद आदि का निर्माण वैश्विक स्तर पर जिम्मेदार कारक हैं।

इस संदर्भ में, सत्य के गुण को सुदृढ़ करने के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास करना अत्यावश्यक है। उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत स्तर पर बच्चों की सही परवरिश शुरू करने के लिए सही जगह हो सकती है।

माता-पिता को बच्चों को सच्चाई का अभ्यास करने की आवश्यकता के बारे में सिखाना चाहिए। उन्हें खुद भी सच्चाई का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि वे अपने बच्चों के लिए सबसे पहले रोल मॉडल होते हैं। इसी तरह शिक्षकों को भी ऐसा ही करना चाहिए।

सार्वजनिक जीवन में प्रमुख हस्तियों को ऐसा ही करना चाहिए। जब नेता सही रास्ते पर चलते हैं तो आम जनता भी ऐसा ही करती है।

सभी धर्मों के आम संदेशों की प्राप्ति कट्टरता और सांप्रदायिकता को संबोधित करने में बहुत प्रभावी हो सकती है। लोगों के बीच इसका प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। इसी प्रकार वैश्विक राजनीति में सत्य की विजय सुनिश्चित करने के लिए विश्व बंधुत्व की भावना को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

आज के समय में कई ऐसे मुद्दे हैं जो सत्यवादिता के लिए एक कठिन आह्वान कर रहे हैं। चाहे वह बढ़ते भ्रष्टाचार का मुद्दा हो या नकली खबरों का उदय या हथियारों, युद्धों और सांप्रदायिक हिंसा का बढ़ना। इसलिए यह उचित समय है कि हम व्यक्तिगत समाज, राष्ट्र और विश्व समुदाय के रूप में इस मूल्य को आत्मसात करें।

सत्य एक सजावटी नैतिक मूल्य नहीं है। यह भी केवल महापुरुषों का विलास नहीं है। वस्तुतः यह मानव उत्थान की आधारशिला है। जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक पहलुओं का लेमिनेशन इसी पर निर्भर करता है। मानवता की सफलता इस पर टिकी हुई है। सच्चाई की जीत होती है. सत्य की ही विजय होती है।

6.वंदे मातरम

उपनिषदों का ज्ञान कहता है "जननी जन्मभूमि स्वर्गदीपी गरियासी" अर्थात माता का जन्म स्थान स्वर्ग के समान है। अनगिनत लोगों ने निःस्वार्थ भाव से अपना पूरा जीवन मातृभूमि भारत की सेवा में समर्पित कर दिया है। पवित्र मातृभूमि भारत की महिमा और पवित्रता की रक्षा और पालन करते हुए अनगिनत देशभक्तों ने शहादत को गले लगा लिया।

इस निबंध में हम चर्चा करेंगे कि हमारी मातृभूमि पूजा के योग्य क्यों है, हमें अपनी मातृभूमि की पूजा कैसे करनी चाहिए और मातृभूमि की जय के नाम पर हमें क्या नहीं करना चाहिए। इसके अलावा, हम इतिहास के पन्नों में झांकेंगे और कुछ ऐसे गौरवशाली व्यक्तित्वों को देखेंगे जिनकी भक्ति ने भारत को गौरवान्वित महसूस कराया। अंत में हम कुछ दबाव वाली समस्याओं का पता लगाने की कोशिश करेंगे, जिनका भारत वर्तमान समय में सामना कर रहा है, साथ ही कुछ संभावित समाधान जो भारत की सच्ची पूजा के रूप में पेश किए जा सकते हैं।

मातृभूमि वह स्थान है जहाँ हम जन्म लेते हैं, जहाँ हमारे पूर्वजों ने जन्म लिया था। यह वह भूमि है जिससे हमारी सांस्कृतिक, सभ्यतागत जड़ें जुड़ी हुई हैं। हमारे मामले में यह भारत है।

ऐसे कई कारण हैं जो हमारी मातृभूमि को पूजनीय बनाते हैं। यह हमें पहचान प्रदान करता है। यह हमें समृद्ध सांस्कृतिक विरासत प्रदान करता है। हमारा ऐतिहासिक, आध्यात्मिक और सामाजिक खजाना हमारी मातृभूमि में निहित है। इसके अलावा यह पीढ़ियों से हमें पालता, खिलाता और फलता-फूलता रहा है।

इसके अतिरिक्त, जब मातृभूमि भारत है, तो इस पर गर्व न करने का शायद ही कोई कारण मिल सकता है। एक ओर यह उपजाऊ भूमि, हरे-भरे जंगलों, आश्चर्यजनक वनस्पतियों और जीवों से भरा हुआ है। और दूसरी ओर यह विविध क्षेत्रों के महान लोगों का स्थान है। चाहे वह प्राचीन काल में बुद्ध हों, महावीर हों, अशोक हों, आर्यभट्ट हों या मध्यकाल में कबीर, नानक, शिवाजी हों या आधुनिक काल में गांधी, अंबेडकर, टैगोर हों या आधुनिक समय में कलाम, कल्पना चावला, कैप्टन मनोज पांडे हों।

यद्यपि यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि मातृभूमि पूजा के योग्य है, फिर भी इस बात पर चर्चा करना वांछनीय प्रतीत होता है कि हमें इसकी पूजा कैसे करनी चाहिए? दूसरे शब्दों में इसका वास्तव में क्या अर्थ है जब हम कहते हैं कि हमें अपनी मातृभूमि की पूजा करनी चाहिए।

मातृभूमि की पूजा को शाब्दिक अर्थों में नहीं लिया जाना चाहिए। इसके साथ व्यापक अर्थ जुड़े हुए हैं। हालाँकि मौलिक अर्थों में इसका तात्पर्य मातृ राष्ट्र की निस्वार्थ सेवा से है।

यह निःस्वार्थ सेवा कई रूप ले सकती है। उदाहरण के लिए, इसमें एक ओर हमारी सीमाओं की रक्षा करना शामिल हो सकता है और दूसरी ओर तकनीकी प्रगति में योगदान देकर राष्ट्र की सेवा करना भी शामिल हो सकता है। इसी तरह एक सरकारी अधिकारी के रूप में ईमानदारी से कर्तव्य पालन करना मातृभूमि की पूजा का एक और तरीका हो सकता है।

महात्मा गांधी के अनुसार राष्ट्र की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। वह आगे कहते हैं कि राष्ट्र की सेवा करने का सबसे अच्छा तरीका लाखों, असहाय, दलितों और निराश्रित लोगों की सेवा में खुद को समर्पित करना है।

इस प्रकार अब तक हम देख सकते हैं कि मातृभूमि की पूजा में अनिवार्य रूप से कम से कम दो तत्व होने चाहिए। इसमें किसी के कर्तव्य के प्रदर्शन में प्रतिबद्ध और ईमानदार प्रयास शामिल होना चाहिए। इसमें दूसरी ओर असहाय और जरूरतमंदों की सेवा की भावना शामिल होनी चाहिए। इन तत्वों के अलावा संविधान और कानूनों का पालन राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेना, बंधुत्व और सद्भावना के मूल्यों को बनाए रखना वास्तव में मातृभूमि की पूजा का परिणाम है।

मातृभूमि की पूजा करने के लिए क्या करना चाहिए, इस पर चर्चा करने के बाद आइए उन मान्यताओं और प्रथाओं पर चर्चा करें जिन्हें कभी-कभी मातृभूमि की पूजा करने के तरीके के रूप में गलत समझा जाता है।

पहली बात तो यह कि किसी दूसरे राष्ट्र के प्रति घृणा पर आधारित संकीर्ण राष्ट्रवाद वंदे मातरम नहीं है। यह राष्ट्रवादी विचारों को विशेष रूप से किसी विशेष धार्मिक समुदाय की अवधारणा पर आधारित नहीं कर रहा है।
इसके अलावा, मातृभूमि की पूजा सार्वभौमिक भाईचारे की धारणा के विपरीत नहीं है, बल्कि यह उसकी ओर पहला कदम है।

साथ ही, संस्कृति और सांस्कृतिक रूढ़िवादिता के प्रति कठोर रवैया मातृभूमि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का सही तरीका नहीं है। वास्तव में यह संस्कृति और समाज के प्रति प्रगतिशील और गतिशील दृष्टिकोण ही है जिसे सही मायने में मातृभूमि की पूजा कहा जा सकता है।

इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जहां भारत माता के महान पुत्रों और पुत्रियों ने अनुकरणीय तरीके से देश की सेवा की है। आइए उनमें से कुछ पर चर्चा करें।

राजनीतिक क्षेत्र में हमारे पास महात्मा गांधी, अम्बेडकर, जय प्रकाश नारायण आदि हैं। एक ओर गांधी ने भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता की ओर अग्रसर किया और दूसरी ओर डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों से समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के आदर्शों पर आधारित संविधान लाया। इसी तरह जय प्रकाश नारायण ने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान सराहनीय भूमिका निभाई और राष्ट्रीय आपातकाल की अवधि के दौरान लोकतंत्र के रक्षक के रूप में उभरे।
अगर हम सामाजिक दायरे की बात करें तो राजा राम मोहन राय, विनोबा भावे, बाबा अंते और अन्य लोगों को देख सकते हैं जिनके प्रयासों से भारतीय समाज को बेहतर बनाने में मदद मिली।

इसी तरह हमारे पास विज्ञान के क्षेत्र में डॉ. कलाम, विक्रम साराभाई, के. सिवान और अन्य हैं जिनके निरंतर प्रयासों से भारत एक अग्रणी वैज्ञानिक शक्ति के रूप में उभरा है। इसके अलावा खेल के क्षेत्र में हमारे पास नीरज चोपड़ा, मिल्खा सिंह, सचिन तेंदुलकर, मैरी कॉम हैं जिन्होंने वैश्विक स्तर पर भारत को गौरवान्वित महसूस कराया है।

समकालीन समय में, यह देखा जा सकता है कि भारत कुछ समस्याओं का सामना कर रहा है जो उसे पीछे खींच रही हैं। इन समस्याओं के समाधान में योगदान देकर ही भारत को सच्ची भेंट दी जा सकती है।
इस संदर्भ में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, भ्रष्टाचार, शिक्षा, साम्प्रदायिक तनाव, राजनीति का ह्रास, सीमाओं की सुरक्षा की समस्याएँ प्रमुख हैं। इस प्रकार हम भारतीयों को इन समस्याओं के व्यापक समाधान के लिए व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के स्तर पर ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है।

अंत में हम कह सकते हैं कि वन्दे मातरम् हर भारतीय के जीवन की आत्मा होनी चाहिए। यह उत्कृष्टता प्राप्त करने और देशवासियों की सेवा करने के निरंतर और ईमानदार प्रयासों में प्रकट होना चाहिए। जब कोई भी भारतीय इसे अपने जीवन के मंत्र के रूप में धारण करेगा, तो भारत निश्चित रूप से धरती पर स्वर्ग का अवतार होगा।

7.लोकतंत्र विरोधाभासों से भरा हुआ है

समकालीन समय में लोकतंत्र ने निर्विवाद रूप से सरकार के सबसे प्रभावशाली रूप का स्थान ग्रहण कर लिया है। लोकतंत्र और लोकतंत्रीकरण की सीमा को एक राजनीतिक व्यवस्था की

सफलता का पैमाना माना जाता है। हालांकि, करीब से अवलोकन करने पर, विद्वानों ने लोकतंत्र में कई विरोधाभासों और दुविधाओं पर प्रकाश डाला है।

इस निबंध में हम लोकतंत्र से जुड़े विभिन्न प्रकार के विरोधाभासों का पता लगाने का प्रयास करेंगे। इसके अलावा, हम उन्हें संभालने के सर्वोत्तम तरीकों के साथ-साथ परिणामों पर भी गौर करेंगे।

आगे बढ़ने से पहले, सबसे पहले हम समकालीन समय में लोकतंत्र के महत्व पर नजर डालते हैं। आजकल, लोकतंत्र केवल सरकार के एक रूप तक ही सीमित नहीं है। यह अब्राहम लिंकन की उस परिभाषा से आगे निकल गया है कि यह जनता की, जनता के लिए और जनता द्वारा सरकार है। आज, यह जीवन के एक तरीके के रूप में तेजी से विकसित हो रहा है। इसे विविध आवश्यकताओं और रुचियों के बीच संतुलन बनाने का सबसे व्यवहार्य विकल्प माना जाता है। इसके अलावा, इसे विवादों को समाप्त करने, आम सहमति बनाने और शांति स्थापित करने के तरीके के रूप में पेश किया जाता है।

जैसे-जैसे लोकतंत्र का महत्व बढ़ा है, वैसे-वैसे इससे जुड़े विरोधाभासों की संख्या भी बढ़ी है। वैचारिक क्षेत्र में विरोधाभास इस संबंध में एक प्रमुख है।

स्वतंत्रता और समानता लोकतंत्र के दो सबसे पोषित वैचारिक लक्ष्य माने जाते हैं। हालाँकि वे अक्सर बिल्कुल विपरीत दिखाई देते हैं। जब स्वतंत्रता को बढ़ाने की कोशिश की जाती है तो असमानता बढ़ती है। इसी प्रकार जब समानता पर बल दिया जाता है तो स्वतंत्रता के हनन को लेकर चिंताएँ उभर कर सामने आती हैं। इन दोनों आदर्शों को संतुलित करना लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती है। उन्हें संतुलित किए बिना न्याय पूरा करने का उद्देश्य अधूरा रहेगा। न्याय के बिना, लोकतंत्र अर्थहीन है।

बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक पहेली लोकतंत्र का एक और विरोधाभास है। लोकतंत्र में निर्णय बहुमत द्वारा लिया जाता है। यह लोकतंत्र को बहुमत के नेतृत्व वाला शासन बनाता है। लेकिन साथ ही, अल्पसंख्यकों के अधिकार और अल्पसंख्यकों की चिंताओं पर विचार भी लोकतंत्र के लिए बहुत मौलिक है। इसलिए एक लोकतांत्रिक सरकार को इन दोनों के बीच नाजुक संतुलन सुनिश्चित करना होता है।

एक अन्य संदर्भ में, लोकतंत्र का सामना एक स्थिर सरकार के साथ-साथ लोगों को एक जिम्मेदार सरकार प्रदान करने की दोहरी चुनौती से होता है। स्थिर सरकार के लिए प्रचंड बहुमत की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर जिम्मेदार सरकार को सरकार की नीतियों की निरंतर और व्यापक जांच की आवश्यकता होती है।

इसके अलावा, समूह हितों के साथ व्यक्तियों के हितों और सरोकारों को संतुलित करने की चुनौती है। उदाहरण के लिए - व्यक्तिगत हित में व्यक्तियों को अधिकतम स्वायत्तता प्रदान करना शामिल है। लेकिन साथ ही समूह के हित सामाजिक आकांक्षाओं और परंपराओं के अनुरूप व्यक्तियों की मांग करते हैं। यह निश्चित रूप से दुविधा पैदा करता है। धार्मिक स्वतंत्रता, समान नागरिक संहिता आदि के मुद्दे को इस विरोधाभास से जोड़ा जा सकता है।
इसी प्रकार, अधिकारों की गारंटी लोकतंत्र का सार है। लेकिन साथ ही स्वस्थ लोकतंत्र के लिए व्यक्तियों के कर्तव्य भी महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों में संतुलन बनाना लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती है।

इसके अलावा, लोकतंत्र को विविधता को प्रतिबिंबित करना चाहिए। विविधता की उपस्थिति और विविध विचारों और रुचियों को आत्मसात करना लोगों के सच्चे जनादेश को दर्शाता है। हालाँकि बहुत अधिक विविधता अनुचित अस्थिरता और संघर्ष पैदा करती है। इसलिए एकता सुनिश्चित करने के लिए स्वस्थ सीमाओं के भीतर और वैध तरीके से विविधता का प्रबंधन आवश्यक है। यह लोकतंत्र द्वारा सामना किया जाने वाला एक और दुर्जेय विरोधाभास है।

इसके अलावा, पहचान की राजनीति का मुद्दा, शक्ति का पृथक्करण, शक्ति का विकेंद्रीकरण, पारंपरिक और आधुनिक मूल्य प्रणालियों को संतुलित करना लोकतांत्रिक सरकार से जुड़ी कुछ अन्य चुनौतियाँ और दुविधाएँ हैं।
हालांकि इन चुनौतियों का समाधान करना कठिन प्रतीत होता है, लेकिन लोकतंत्र के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रभावी, सौहार्दपूर्ण और स्थायी रूप से इनसे निपटें। भारत के मामले में हम देख सकते हैं कि इस संबंध में कई प्रयास किए गए हैं।

उदाहरण के लिए, प्रस्तावना एक ही सांस में स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व के आदर्शों को रेखांकित करती है। इसी प्रकार, मौलिक कर्तव्यों और निर्देशक सिद्धांतों के साथ मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। यह एक ओर सामूहिक अधिकारों के साथ व्यक्तिगत अधिकारों और दूसरी ओर कर्तव्यों के साथ अधिकारों का सामंजस्य स्थापित करना चाहता है। इसके अलावा, उचित प्रतिबंधों के लिए भी संवैधानिक प्रावधान किया गया है।
इसके अलावा, धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत, सरकारी तंत्र में नियंत्रण और संतुलन और पंचायती राज व्यवस्था के साथ संघीय व्यवस्था के प्रावधान संविधान में मौजूद हैं। यह भारतीय लोकतंत्र को सत्ता के विकेंद्रीकरण को संतुलित करने में सक्षम बनाता है।

हालाँकि कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनका भारतीय लोकतंत्र इन विरोधाभासों से निपटने के दौरान सामना करता है। इनमें पहचान आधारित राजनीति, दल-बदल की समस्या, सदन के भीतर और बाहर लगातार विरोध और व्यवधान, समाज के कुछ वर्गों के अधिक और कम प्रतिनिधित्व की समस्या आदि शामिल हैं।

लोकतान्त्रिक संस्कृति को बढ़ाना और लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं में जनता की भागीदारी की भावना को बढ़ाना इस सन्दर्भ में एक अच्छी शुरुआत हो सकती है। इसके अलावा, पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र में वृद्धि और राष्ट्र निर्माण बलों को मजबूत करने पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। एक शिक्षित और जागरूक जनता लोकतंत्र के लिए एक अमूल्य संपत्ति है। इसलिए जनता के बढ़ते शैक्षिक मानकों और दूसरी ओर प्रेस की स्वतंत्रता पर बहुत जोर दिया जाना चाहिए।

हालांकि ऊपर सुझाए गए सुधार केवल सांकेतिक प्रकृति के हैं, लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे कदम उठाए जाएं।

एक लोकतांत्रिक देश के नागरिक के रूप में हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि लोकतंत्र सरकार का सबसे अच्छा रूप है, लेकिन इसकी बहुत मांग भी है। इसलिए, हमें यह सुनिश्चित करने के लिए लोकतंत्र की अपेक्षाओं को पूरा करना चाहिए कि इसके विरोधाभासों के परिणामस्वरूप इसका पतन न हो।

8."एक संतुष्ट सुअर की तुलना में असंतुष्ट सुकरात होना बेहतर है"।

घोर अँधेरी रात थी। दुनिया सो रही थी। लेकिन उनके राजमहल में एक युवा राजकुमार परेशान था। हालाँकि उनके पास वह सब कुछ था जो एक बहुत ही सुखमय जीवन जीने के लिए आवश्यक था। सभी विलासिता उनके निपटान में थी। फिर भी उनका मन संसार के अपरिहार्य कष्टों से व्याकुल हो रहा था। वास्तविकता को जानने की जिज्ञासा उनके विवेक को चला रही थी।

उस रात राजकुमार ने अपना महल और परिवार छोड़ दिया और वास्तविकता जानने के लिए खुद को समर्पित कर दिया। सभी विलास असहाय उनके त्याग के साक्षी बने। यह दुनिया आज इस राजकुमार को महान बुद्ध, एशिया के प्रकाश के रूप में जानती है।

उपरोक्त उदाहरण उन असंख्य उदाहरणों में से एक है जो इतिहास हमें उस सच्ची भावना के संबंध में सिखाता है जिसमें व्यक्ति को जीवन का नेतृत्व करना चाहिए।

इस निबंध में हम अच्छे जीवन से जुड़ी भ्रांतियों के बारे में चर्चा करेंगे कि एक अच्छा जीवन कैसा होना चाहिए और इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

अच्छा जीवन क्या नहीं है?

सार्वजनिक प्रवचनों में हम अक्सर ऐसे लोगों के सामने आते हैं जो जीवन जीने के सही तरीके के रूप में सुखवादी मूल्यों और दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हैं। काफी हद तक हम इसके प्रति ललचाते भी हैं।

हालांकि, जैसा कि महापुरुषों ने कहा है और इतिहास इसे बार-बार सिखाता है, आनंद की एकमात्र खोज वाला जीवन अक्सर व्यक्ति को दुख देता है। जब सुखवाद संस्कृति का हिस्सा बन जाता है तो समाज की कई पीढ़ियां पीड़ित होती हैं।

इस संदर्भ में हम फ्रांसीसी क्रांति के दौरान फ्रांस की साम्राज्ञी मैरी एंटोनेट का उदाहरण ले सकते हैं। कई कारकों में, इतिहासकार उसकी असाधारण जीवन शैली को फ्रांसीसी क्रांति के कारकों में से एक मानते हैं।

सुखवाद के अलावा, ज्ञान की खोज की सामान्य उपेक्षा और मौजूदा स्तर से संतुष्ट रहना भी कुछ ऐसा है जो एक अच्छा जीवन नहीं होना चाहिए।
भारत का दुर्भाग्यपूर्ण औपनिवेशीकरण एक ऐसा उदाहरण है जहां सीखने की प्रक्रिया में ठहराव एक राष्ट्र को बहुत महंगा पड़ा।

आराम और संतोष का जीवन अच्छा जीवन क्यों नहीं है?

इस प्रश्न के लिए कि आनंद की खोज और ज्ञान के प्रति प्रेम के बिना जीवन अच्छा जीवन क्यों नहीं है, विद्वानों ने दो महत्वपूर्ण कारण बताए हैं।

सबसे पहले, मनुष्य केवल अन्य जानवर नहीं हैं। वे तर्कसंगत प्राणी हैं। उनमें नैतिकता का बोध है। मनुष्य के अंतःकरण में स्वयं को आध्यात्मिक रूप से ऊपर उठाने की ललक सदैव विद्यमान रहती है।

दूसरी बात अगर हम अपनी भोग-विलास में लगे रहे और अपनी जिज्ञासा को मरने दिया तो न तो हम प्रगति के काबिल रहेंगे और न ही हम उन चुनौतियों का सामना कर पाएंगे जो हमारे अस्तित्व को संकट में डालती हैं।

जलवायु परिवर्तन का मुद्दा इस संदर्भ में एक उपयुक्त उदाहरण है। प्रकृति लगातार मानव जाति को संकेत दे रही है कि यदि उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर रोक नहीं लगाई तो उनके सामने आपदाओं की श्रृंखला है। यदि हम भोग-विलास के साधनों के संचय में लगे रहेंगे और उचित कदम नहीं उठायेंगे तो हमारे अस्तित्व पर भी संकट आ सकता है।

एक अच्छा जीवन कैसा दिखना चाहिए?

किसे अच्छा जीवन नहीं माना जाना चाहिए, इस पर चर्चा करने के बाद, आइए चर्चा करें कि यह कैसा दिखना चाहिए।
एक अच्छा जीवन उच्च नैतिक मूल्यों के सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। यह ईमानदारी का जीवन होना चाहिए। महात्मा

गांधी के अनुसार, हम तभी खुश होते हैं जब हम जो सोचते हैं, जो कहते हैं और जो करते हैं, उसके बीच सामंजस्य होता है।

परोपकार, करुणा और सहानुभूति अन्य तत्व हैं जो जीवन को सच्चे अर्थों में मानवीय बनाते हैं। न्यायोचित जीवन जीना मनुष्य का जीवन कहलाने के योग्य नहीं है। इस प्रकार महात्मा गांधी कहते हैं कि स्वयं को खोजने का सबसे अच्छा तरीका दूसरों की सेवा में स्वयं को समर्पित करना है।

उच्च नैतिक मूल्यों के अलावा, अच्छे जीवन में सीखने के लिए एक सुसंगत और बच्चे जैसी ललक भी होनी चाहिए। यह सीखने की क्षमता है जिसने विकास प्रक्रिया के दौरान मनुष्यों को अलग किया है। और यह सीखने की खोज है जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को खुद का एक बेहतर संस्करण बनाने के लिए मौलिक है।

जब हम कहते हैं कि सीखने के साथ वैज्ञानिक स्वभाव का समावेश निहित है। यह वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण था जिसने इतिहास के दौरान समाज को सती और गुलामी जैसी कुप्रथाओं को छोड़ने के लिए प्रेरित किया।

अच्छे जीवन के आदर्शों को कैसे साकार करें?

अच्छे जीवन के आदर्शों को साकार करने के लिए पहला कदम लोगों के बीच सही विश्वास प्रणाली का समावेश होना चाहिए। इसके लिए प्रयास बचपन से ही शुरू कर देने चाहिए। परिवार, समाज, शिक्षण केन्द्रों जैसे विद्यालयों और महाविद्यालयों की संस्थाओं को इस संबंध में सचेत प्रयास करने चाहिए।

दूसरा, आर्थिक और राजनीतिक ढांचों में सोच-समझकर सुधार किए जाने चाहिए। उन्हें इस तरह से पुनर्गठित करना चाहिए कि वे व्यक्तियों में नैतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा न दें। समाज के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया, ग्राम स्वराज की अवधारणा और महात्मा गांधी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा को आर्थिक और राजनीतिक संरचना के केंद्र में लाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य के जीवन में सुअर के जीवन से अधिक मूल्य हैं। और यह मूल्य इसलिए नहीं है क्योंकि यह अधिक विलासिता का आनंद ले सकता है या अधिक अधिकार प्राप्त कर सकता है। यह मूल्य हर संभव तरीके से खुद को ऊपर उठाने की अंतहीन खोज के कारण है। वह इस खोज में कई बार बेचैनी महसूस कर सकता है। लेकिन यह हर पैसे के लायक है। आखिरकार, यह वर्तमान खामियों के साथ यह असुविधा है और सुधार करने की इच्छा ही मनुष्य के जीवन की पहचान है। अच्छा जीवन और कुछ नहीं बल्कि यह तलाश है।

9.एक स्वस्थ राष्ट्र ही एक उत्पादक राष्ट्र हो सकता है

आइए हम एक काल्पनिक राष्ट्र की कल्पना करें जहां स्कूल जाने वाले बच्चे पोलियो, स्टंटिंग, एनीमिया से पीड़ित हैं; शिक्षक क्षय रोग से पीड़ित हैं; जवान मोटापे से ग्रस्त; इंजीनियर रतौंधी से पीड़ित हैं। ऐसे राष्ट्र की कल्पना भी हमारे मन में भय पैदा करती है। हम ऐसे राष्ट्र की उत्पादकता के बारे में क्या बता सकते हैं? क्या ऐसा राष्ट्र उत्पादक हो सकता है।

इस निबंध में हम इस बात पर चर्चा करने जा रहे हैं कि एक उत्पादक राष्ट्र होने का क्या अर्थ है। उत्पादकता के संबंध में एक अस्वास्थ्यकर राष्ट्र के सामने कौन सी चुनौतियाँ हैं। आगे हम चर्चा करेंगे कि कैसे एक स्वस्थ राष्ट्र उत्पादकता को बढ़ावा देता है। और अंत में हम इस मुद्दे को भारत के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करेंगे।

एक उत्पादक राष्ट्र क्या है?

एक राष्ट्र जो शिक्षा, आर्थिक क्षेत्र, राजनीतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र और पर्यावरण क्षेत्र सहित सभी क्षेत्रों में प्रभावी व्यापक और तेजी से प्रगति करता है, वह एक उत्पादक राष्ट्र है।

ऐसे देश में हर बच्चा स्कूल जाता है। हर सीख से पर्याप्त क्षमता निर्माण होता है। और हर पर्याप्त क्षमता निर्माण का परिणाम बेहतर समग्र व्यक्तित्व में होता है।

ऐसे राष्ट्र के पास न केवल रचनात्मक क्षमताओं से भरा कार्यबल है बल्कि राष्ट्र के धन सृजन में उन क्षमताओं का एहसास करने के लिए शारीरिक शक्ति और सहनशक्ति भी है।

चूंकि अधिकांश कार्यबल उत्पादक गतिविधियों में शामिल हैं, ऐसे देशों में धन समान रूप से वितरित हो जाता है। धन के समान वितरण के कारण ऐसे राष्ट्र में गरीबी के बोझ से दबे लोग बहुत कम मिलते हैं।

एक उत्पादक राष्ट्र में राजनीतिक क्षेत्र को जानबूझकर लोकतांत्रिक भावना से चिह्नित किया जाता है। और सामाजिक परिदृश्य समतावाद के उदात्त आदर्शों की अभिव्यक्ति से चिह्नित होता है। समाज के एक वर्ग का दूसरे द्वारा शोषण इसमें अनुपस्थित है।

एक अस्वास्थ्यकर राष्ट्र उत्पादक राष्ट्र बनने के मार्ग को कैसे बाधित करता है?

जब किसी राष्ट्र की जनसंख्या बीमारियों से पीड़ित होती है या स्वस्थ जीवन शैली को बढ़ावा नहीं दिया जाता है, तो उत्पादकता में भारी गिरावट आती है।

अगर बच्चे कुपोषित हैं, नाटे हैं तो हम उनसे अच्छे सीखने के परिणामों की उम्मीद कैसे कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में स्कूल छोड़ने वालों की दर में भारी वृद्धि होती है। यहां तक कि जो लोग अपनी औपचारिक शिक्षा पूरी करने में कामयाब हो जाते हैं, उन्हें खराब कौशल के रूप में चिन्हित किया जाता है। इसके अलावा, उनकी शारीरिक शक्ति में चमक की कमी बनी रहती है और वे उत्पादक और कुशलता से अर्थव्यवस्था में योगदान नहीं करते हैं।

इसके अलावा राष्ट्र में असमानता तब बनी रहती है जब उसमें अच्छे सार्वजनिक स्वास्थ्य का अभाव होता है। ऐसा अस्वस्थ राष्ट्र के साथ होने वाली दोहरी बुराइयों के कारण होता है। सबसे पहले, लोग आर्थिक प्रक्रिया में कुशलता से योगदान नहीं करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी उप-इष्टतम आर्थिक प्रगति होती है। और दूसरा उन्हें बीमारियों के इलाज पर काफी खर्च करना पड़ता है।

इथियोपिया, सूडान, दक्षिण सूडान जैसे अफ्रीका के राष्ट्र इस तथ्य के साक्षी हैं कि निम्न स्वास्थ्य संकेतकों के कारण खराब मानव पूंजी निर्माण राष्ट्र के पिछड़ेपन का कारण बना है। यह इस तथ्य के बावजूद है कि ये राष्ट्र विशाल राष्ट्रीय संसाधनों से संपन्न हैं।

कैसे एक स्वस्थ राष्ट्र तेजी से उत्पादक राष्ट्र की ओर कदम बढ़ाता है?
जापान एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहां स्वस्थ जनसंख्या ने उत्पादकता के मामले में राष्ट्र की महानता का मार्ग प्रशस्त किया है।

जापान की संस्कृति स्वस्थ जीवन शैली को अत्यधिक महत्व देती है। इससे कम उम्र से ही बेहतर क्षमता निर्माण होता है। यह आगे उच्च आर्थिक उत्पादकता, उपचार पर कम व्यय में तब्दील होता है। नतीजतन, पूरा समाज और राष्ट्र आर्थिक रूप से समतावादी, सामाजिक रूप से लचीला और राजनीतिक रूप से सक्रिय रहता है।

<u>भारत का मामला</u>

भारत 200 वर्षों तक औपनिवेशिक शासन के अधीन रहा। इस दौरान जनस्वास्थ्य की दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं किए गए। परिणामस्वरूप भारत ने स्वास्थ्य संकेतकों में दयनीय गिरावट देखी। जीवन प्रत्याशा को 30 वर्ष से कम कर दिया गया। स्वतंत्रता के बाद, स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे को मजबूत करने पर उचित ध्यान दिया गया। स्वस्थ जीवन शैली को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए गए। पोषण से भरपूर खाद्य पदार्थों के व्यापक वितरण का प्रावधान किया गया था। इसके परिणामस्वरूप, स्वास्थ्य संकेतकों में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

शिशु मृत्यु दर, मातृ मृत्यु दर आदि के संदर्भ में बेहतर स्वास्थ्य संकेतकों ने भारतीयों के बीच साक्षरता के स्तर को तेजी से बढ़ाने में बहुत योगदान दिया है। बेहतर आर्थिक उत्पादन में शिक्षा के प्रसार का तेजी से अनुवाद किया गया। पचास साल की छोटी सी अवधि में भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था बन गया।
हालाँकि, भारत में स्वास्थ्य के संबंध में कई कार्य अधूरे हैं। ये लगातार देश के लिए चुनौतियां पैदा कर रहे हैं। समाज के दलितों और आदिवासी वर्गों में विशेष रूप से कुपोषण, लड़कियों और महिलाओं में एनीमिया की व्यापकता और मोटापे की बढ़ती चुनौती उनमें से कुछ हैं।

<u>क्या किया जाए?</u>

इस प्रकार भारत के मामले में, स्वास्थ्य के प्रति एक व्यापक और सार्वभौमिक दृष्टिकोण रखना महत्वपूर्ण है। इसमें गैर-संचारी और संचारी रोगों के मुद्दों से निपटने के लिए फुट-प्रूफ रणनीति तैयार करना शामिल होना चाहिए।
इसके अलावा स्वास्थ्य पर सार्वजनिक व्यय में काफी वृद्धि की जानी चाहिए। महत्वपूर्ण स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे को बढ़ाने में निजी भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए।

स्वास्थ्य क्षेत्र की योजनाओं के कार्यान्वयन की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए सामुदायिक भागीदारी को बढ़ाया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के एक बड़े पूल का निर्माण किया जाना चाहिए।
आयुष्मान भारत, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, आशा कार्यकर्ता जैसी सरकारी पहलें अपने इरादे में अच्छी हैं। हालाँकि, उनके उचित कार्यान्वयन के लिए मजबूत और सुसंगत सामाजिक और राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

निष्कर्ष
इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य की उत्पादक क्षमता को उजागर करने के लिए स्वास्थ्य सर्वोत्कृष्ट है। स्वस्थ पुरुष स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण करते हैं। स्वस्थ राष्ट्र उत्पादक राष्ट्र बनाता है। इस प्रकार उपनिषद का ज्ञान कहता है - "सर्वे सन्तु निरामय" (हम सभी रोग मुक्त और स्वस्थ हों)

10.परीक्षाएं - एक अपरिहार्य बुराई

परीक्षाएं शिक्षा व्यवस्था का अभिन्न अंग हैं। प्राचीन काल से ही यह ज्ञान को परखने का उपकरण बना हुआ है। रामायण और महाभारत के दिनों में, औपचारिक शिक्षा समाप्त करने से पहले गुरु अपने छात्रों की परीक्षा लेते थे। अभी तक कई आधारों पर यह व्यवस्था जांच के दायरे में आ चुकी है। इस निबंध में हम इस

मुद्दे से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर गौर करेंगे। इसके अलावा, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करेंगे कि क्या परीक्षाएं अच्छी हैं या हमें इसका विकल्प खोजने पर ध्यान देना चाहिए।

आगे बढ़ने से पहले, आइए हम परीक्षा के अर्थ पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास करें। संकल्पनात्मक रूप से, परीक्षा किसी के प्रयासों के मूल्यांकन की प्रक्रिया है जिसे किसी ने ज्ञान प्राप्त करने में लगाया है। इस प्रकार यह छात्र की प्रगति का आकलन करता है।

इस प्रकार परीक्षाएं छात्रों के शैक्षणिक विकास का विश्लेषण करने के लिए एक महान उपकरण हैं। साथ ही शिक्षक का आकलन करने में भी परीक्षाएँ काफी उपयोगी होती हैं। यदि छात्र अच्छा प्रदर्शन करते हैं, तो इसका श्रेय शिक्षक को जाता है।

हालाँकि, हाल के दिनों में, परीक्षाओं ने इस पारंपरिक भूमिका का उल्लंघन किया है। आजकल वे और भी कई उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

आज के संदर्भ में, परीक्षाएं विभिन्न भागों में भर्ती के लिए एक मानदंड के रूप में कार्य करती हैं। इसके अलावा वे उच्च अध्ययन में प्रवेश के लिए बेंचमार्क के रूप में कार्य करते हैं।

हालाँकि, ये भूमिकाएँ जो परीक्षाएँ मानती हैं, उनकी उपयोगिता है, फिर भी उनके साथ कुछ चिंताएँ भी जुड़ी हुई हैं। आइए कुछ दबाव वाले मुद्दों पर चर्चा करें।

आज के समय में परीक्षाएं रोजगार अभियान का केंद्र बिंदु बन गई हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं का करियर की संभावनाओं से गहरा संबंध है। नतीजतन छात्र उन्हें कई मौकों पर जीवन और मृत्यु के सवाल के रूप में लेते हैं। इस तरह की परीक्षाओं में असफलता कई बार अत्यधिक मानसिक आघात पहुँचाती है, यहाँ तक कि आत्महत्या के प्रयास भी।

इसी तरह स्कूल प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए भी प्रवेश परीक्षा आयोजित करते हैं। यह आगे बढ़ते बचपन को खतरे में डालता है क्योंकि छोटे बच्चों पर परीक्षा पास करने का दबाव होता है।

इसके अलावा, विद्वानों ने यह भी बताया है कि उनके वर्तमान स्वरूप में परीक्षाएं किसी के वास्तविक ज्ञान और क्षमता का आकलन करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। हालाँकि, सामाजिक मानसिकता ऐसी हो गई है कि परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन नहीं करने वाले को गूंगा माना जाता है। हालांकि यह सच नहीं है। वास्तव में कोई भी परीक्षा पूरी तरह से किसी की वास्तविक क्षमता का आकलन नहीं कर सकती है।

शिक्षाविदों में परीक्षा के मौजूदा मॉडल के अलावा आम तौर पर तथ्यात्मक ज्ञान का परीक्षण करने के लिए पाया जाता है। हालांकि इसके बजाय विश्लेषणात्मक कौशल का परीक्षण करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।

इन मुद्दों के मद्देनज़र, परीक्षाओं में - उनके इरादे और संदर्भ दोनों में सुधार वांछनीय हैं।

इनमें से कुछ सुधारों को नई शिक्षा नीति 2020 में पहले ही रेखांकित किया जा चुका है। नीति नियमित मूल्यांकन पर जोर देती है। इसके अलावा यह पारंपरिक परीक्षाओं के साथ-साथ स्व-मूल्यांकन और सहकर्मी मूल्यांकन को शामिल करने का सुझाव देता है। इसके अलावा यह छात्रों के विश्लेषणात्मक कौशल के परीक्षण पर ध्यान देने के साथ-साथ मूल्यांकन को उद्देश्य बनाने की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

ये सुझाव वास्तव में एक स्वागत योग्य कदम हैं। हालाँकि कुछ और प्रगतिशील सुधार किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, परीक्षा के समय को चुनने में लचीलापन देना एक ऐसा विकल्प हो सकता है। इससे परीक्षार्थी का दबाव काफी हद तक कम हो सकता है। साथ ही यह इस विचार के अनुरूप हो सकता है कि हर कोई अपनी गति से सीखता है।

इसी तरह ओपन बुक सिस्टम रिफॉर्म एक और रिफॉर्म हो सकता है। इससे छात्रों पर तथ्य संचय का बोझ कम हो सकता है।

साथ ही प्रतियोगी परीक्षाओं की व्यवस्था में भी बदलाव की जरूरत है। प्रक्रिया की निष्पक्षता, प्रासंगिक पाठ्यक्रम डिजाइन आदि कुछ ऐसे कदम हैं जो उठाए जाने चाहिए। इसके अलावा परीक्षा के संबंध में साथियों के दबाव और छात्रों के उपयोग को कम करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। परीक्षा स्वस्थ वातावरण में ली जानी चाहिए और मानसिक तनाव पैदा करने का साधन नहीं बनना चाहिए। इस संबंध में माता-पिता, आकाओं और समाज को बड़े पैमाने पर सुरक्षात्मक भूमिका निभाने की जरूरत है।

इस प्रकार निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि परीक्षा मूल्यांकन का अच्छा साधन है। इसलिए उन्हें उचित प्राथमिकता दी जानी चाहिए। हालाँकि साथ ही, यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि वे शिक्षाविदों की प्रगति का आकलन करने के लिए एकमात्र उपकरण नहीं हैं। इसके अलावा वे कभी भी जीवन की सफलता और असफलता को आंकने का मापदंड नहीं हो सकते। इसलिए इनके महत्व को ज्यादा नहीं बढ़ाना चाहिए और न ही इन्हें हल्के में लेना चाहिए।

11.भ्रष्टाचार की बुराई

रामू की चाय की दुकान पर एक बहुत ही रोचक लेकिन व्यावहारिक बहस चल रही थी। भ्रष्टाचार की गहरी प्रकृति के बारे में विस्तार से बताते हुए, एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आह्वान किया और कहा, "भ्रष्टाचार पानी में मछली की तरह है। मछली कब पानी को निगल जाती है पता नहीं चलता। दूसरे ने बहस को आगे बढ़ाया और जोड़ा, "भ्रष्टाचार दीमक की तरह है। दिन-ब-दिन यह सिस्टम को खोखला कर रहा है।" देर शाम तक बहस चलती रही।

वास्तव में भ्रष्टाचार युगों से प्रचलित शब्दों में से एक है। लोगों द्वारा लगातार आलोचना और निंदा किए जाने के बावजूद, यह अभी भी राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्र के लिए एक विकट चुनौती है।

इस निबंध में हम इस समस्या के विभिन्न तथ्यों पर गौर करेंगे। इसके अलावा, हम इस मुद्दे को सामने लाने की कोशिश करेंगे। इस प्रकार, सबसे पहले हम भ्रष्टाचार के सही अर्थ को समझने की कोशिश करते हैं। भ्रष्टाचार मुख्य रूप से स्वार्थी हितों के लिए सार्वजनिक पद का दुरुपयोग है। इसके कई रूप हो सकते हैं। रिश्वतखोरी, पक्षपात, भेदभाव आदि कुछ सामान्य रूप से ध्यान देने योग्य रूप हैं।

जैसा कि सर्वविदित है, भ्रष्टाचार विशेष रूप से राजनीतिक जीवन और सामान्य रूप से सार्वजनिक जीवन का अभिशाप है। यह कई अवांछित परिणामों की ओर ले जाता है। उदाहरण के लिए भ्रष्टाचार काले धन को जन्म देता है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार, भारत 40% नौकरी से लेकर 100% से अधिक की समानांतर काले धन की अर्थव्यवस्था से ग्रस्त है। यह भारत के वित्तीय स्वास्थ्य को गंभीर रूप से खतरे में डालता है।

इसी तरह भ्रष्टाचार बड़े व्यापारिक घरानों, राजनेताओं और नौकरशाही के बीच गठजोड़ बनाता है। यह बदले में पक्षपातपूर्ण नीति निर्माण की ओर ले जाता है। इसके अलावा यह अक्षम शासन संरचना की ओर भी ले जाता है।

दूसरे संदर्भ में, भ्रष्टाचार व्यवस्था में लोगों के भरोसे को गहरा झटका देता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अधिक भ्रष्टाचार वाला देश अधिक लोकप्रिय प्रतिरोध, हड़तालों और आंदोलनों का सामना करता है। साथ में ये घटनाएँ राष्ट्र के विकास की संभावनाओं को बाधित करती हैं।

नकारात्मक परिणामों की सूची लंबी है। और इसका बहुत संक्षिप्त रूप में वर्णन करना पर्याप्त नहीं हो सकता है। हालाँकि, उपर्युक्त परिणाम और अन्य निहितार्थ जैसे राजनीति का अपराधीकरण, न्याय से वंचित करना, कल्याणकारी दृष्टि का विध्वंस आदि इस बात का संकेत है कि भ्रष्टाचार किस हद तक पूरे राष्ट्र को खोखला कर देता है।

भ्रष्टाचार के वास्तविक कारणों को जानने की खोज में प्राचीन काल के विद्वानों ने खुद को शामिल किया है। ये कारण व्यापक हैं और जीवन के विभिन्न पहलुओं में फैले हुए हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर, वासना और वंशवाद की भावनाएँ प्रमुख कारक हैं जो किसी को भ्रष्ट आचरण में लिप्त होने के लिए उकसाती हैं। इसी तरह समाज में धन संचय के संदर्भ में सफलता का मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति गलत मूल्य प्रणाली बनाती है जो अंततः भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है।

इसके अलावा उचित नियंत्रण और संतुलन की अनुपस्थिति और प्रणाली में कई खामियों की उपस्थिति भ्रष्टाचार को अच्छी तरह से जन्म देती है। इसी तरह अन्य जिम्मेदार कारकों में राजनीति का अपराधीकरण, नौकरशाही का राजनीतिकरण, पारलौकिक वफादारी की उपस्थिति आदि शामिल हैं।
अब सवाल उठता है कि भ्रष्टाचार को सार्वजनिक जीवन से कैसे खत्म किया जाए। कौटिल्य के अनुसार अधिकारियों के पर्यवेक्षण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। वह इसके लिए एक मजबूत जासूसी तंत्र की मौजूदगी पर काफी जोर देता है।

एक अन्य संदर्भ में महात्मा गांधी सत्ता और भ्रष्टाचार के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी पर प्रकाश डालते हैं। उनके अनुसार सत्ता भ्रष्ट करती है और इसलिए वे सार्वजनिक जीवन को कर्तव्य के पदानुक्रम पर बनाने की वकालत करते हैं न कि सत्ता के पदानुक्रम पर। उनकी दृष्टि में भ्रष्टाचार के खतरे को रोकने में नैतिक उत्थान का महत्व सर्वोपरि है।

आधुनिक राजनीतिक वैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने भ्रष्टाचार के मुद्दे से निपटने के लिए पारदर्शिता, निष्पक्षता और उत्तरदायी प्रतिक्रिया प्रणाली जैसे पहलुओं पर महत्व दिया है।
उम्मीद है कि उपरोक्त तीन विचारों पर आधारित रणनीति भ्रष्टाचार से निपटने में प्रभावी होगी।

हाल के दिनों में सरकार ने भ्रष्टाचार के प्रति अपने जीरो टॉलरेंस के रवैये की घोषणा की है। भारत भर में, सार्वजनिक क्षेत्र विशेष रूप से अन्ना आंदोलन के बाद भ्रष्टाचार के खिलाफ अधिक मुखर हो गया है।

इस संदर्भ में लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, आरटीआई अधिनियम, व्हिसिल ब्लोअर्स संरक्षण अधिनियम, ई-गवर्नेंस को बढ़ावा देने आदि जैसी पहलें महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण प्रगति हैं। हालांकि अभी भी लंबा रास्ता तय करना है।

कुछ सुझावों को शामिल किया जा सकता है जिनमें पहले स्थान पर व्यक्तियों का नैतिक उत्थान शामिल हो सकता है। यह कार्य प्राथमिकता के आधार पर प्रारंभ होना चाहिए। इसमें घर, स्कूल और समाज को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। "यदि हम ईमानदार व्यक्ति बनाएंगे, तो हम भ्रष्टाचार मुक्त समाज का निर्माण करेंगे" - यह उक्ति वास्तव में सत्य है।

इसी प्रकार सार्वजनिक कार्यालयों में पारदर्शिता और वस्तुनिष्ठता बढ़ाने के लिए उचित प्रयास किए जाने चाहिए। मजबूत सार्वजनिक लेखापरीक्षा के साथ बढ़ा हुआ डिजिटलीकरण इस संबंध में महत्वपूर्ण बदलाव ला सकता है। साथ ही कानून का युक्तिकरण, न्यायिक सुधार, पुलिस सुधार आदि कुछ अन्य अति आवश्यक उपाय हैं।

इस प्रकार, कुछ लोगों के लिए हम कह सकते हैं कि वास्तव में भ्रष्टाचार एक परजीवी है जो लगातार देश का खून चूस रहा है। हालांकि, इस बीमारी का इलाज संभव नहीं है। जरूरत है अदम्य इच्छाशक्ति और उच्च सत्यनिष्ठा के लोगों की।

12.भारतीय समाज का बदलता चेहरा

हेराक्लिटस ने एक बार कहा था "इस दुनिया में परिवर्तन के अलावा कुछ भी स्थायी नहीं है"। यह बात भारतीय समाज पर भी लागू होती है। यदि हम इतिहास के पन्ने पलटें तो हम पाएंगे कि वर्षों बाद भारतीय समाज ने स्वयं को विकसित किया है और परिवर्तन की परिघटना को अपनाया है। यह वर्तमान समय में और भी सत्य प्रतीत होता है।

इस निबंध में हम भारतीय समाज में आए परिवर्तनों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। इसके अलावा, हम अन्य बातों के साथ-साथ विभिन्न पहलुओं से इन परिवर्तनों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।
इस प्रकार, वर्तमान समय और समकालीन समाज की ओर बढ़ने से पहले, आइए हम पारंपरिक भारतीय समाज पर एक नज़र डालें।

पारंपरिक भारतीय प्रणाली की विशेषता आम तौर पर अन्य चीजों के अलावा घनिष्ठ रूप से जुड़े संयुक्त परिवार, पितृसत्ता, जाति व्यवस्था, आत्मनिर्भर ग्राम जीवन है। पंचायत प्रणाली और समुदाय आधारित सभाएं पारंपरिक भारतीय समाज की राजनीतिक संरचना को चिह्नित करती हैं।
हालाँकि, समय के साथ यह पारंपरिक समाज बदल गया है, खासकर पिछले 50-60 वर्षों में। आज भी यह प्रवाह की अवस्था है।

भारतीय समाज में शहरीकरण में काफी वृद्धि हुई है। इससे भारत में महानगरीय संस्कृति का विकास हुआ है। एक सामाजिक श्रेणी के रूप में वर्ग का विकास और जाति का कमजोर होना भी शहरीकरण का प्रभाव है।

आज परिवार की संयुक्त व्यवस्था का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है। पारंपरिक व्यावसायिक संरचनाएं भी तेजी से नवीनतम 21 वीं सदी के व्यवसायों द्वारा प्रतिस्थापित की जा रही हैं।
इसके अलावा, सभी आयामों में नारी शक्ति में आया उछाल शायद सबसे उत्कृष्ट परिवर्तनों में से एक है। इसी तरह, शैक्षिक मानकों और पेशेवर कौशल में वृद्धि भी उल्लेखनीय है।

दूसरे संदर्भ में, हम पा सकते हैं कि भारतीय समाज को चलाने वाली मूल्य प्रणालियाँ भी बदल गई हैं। इस संबंध में भौतिकवाद, व्यक्तिवाद, तर्कसंगतता में वृद्धि उल्लेखनीय है।

भारतीय समाज में अंतर-पीढ़ीगत अंतःक्रियाओं में भी कुछ बदलाव आया है। आज, पुरानी पीढ़ियों की तुलना में मिलेनियल्स की जीवन शैली और दृष्टिकोण के बीच एक तीव्र अंतर देखा जा सकता है। इससे जनरेशन गैप की परिघटना पैदा हुई है।

धार्मिक क्षेत्र में हम देख सकते हैं कि भारतीय समाज में कुछ परिवर्तन हुए हैं। भारतीय समाज के कुछ वर्गों ने इस्कॉन जैसे एकेश्वरवादी भक्ति संप्रदायों को अपनाया है, जबकि अन्य पूजा के पारंपरिक कर्मकांडों से जुड़े हुए हैं और फिर भी कुछ अन्य लोगों ने अज्ञेयवाद और नास्तिकता का विकल्प चुना है।

दूसरे संदर्भ में, राजनीति के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भारत में नागरिक समाज और सहभागी लोकतंत्र की संस्कृति का विकास हुआ है। गांधीजी द्वारा बोए गए सत्याग्रह के बीज अत्यधिक फलदायी हुए हैं और किसी भी राजनीतिक मांग को आगे बढ़ाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में विकसित हुए हैं।

हालाँकि, ऊपर चर्चा किए गए परिवर्तन अभी तक संपूर्ण नहीं हैं, वे परिवर्तन के वर्तमान परिदृश्य के संकेत हैं। इनमें से कुछ परिवर्तन वास्तव में स्वागत योग्य हैं, लेकिन उनमें से कुछ ने चिंता का कारण बना दिया है।

उदाहरण के लिए, एकल परिवार प्रणाली और महानगरीय शहरी संस्कृति के विकास ने समाज में अकेलेपन, अलगाव की चिंता और कमजोर सामाजिक सामंजस्य को जन्म दिया है। इसी तरह भौतिकवाद और सुखवाद पर अत्यधिक जोर ने समाज में भ्रष्टाचार और नैतिक पतन को एक महत्वपूर्ण पैमाने पर जन्म दिया है।

इसके अलावा, सांप्रदायिक तनाव, जाति का राजनीतिकरण, देशी भाषाओं और पहनावे में गिरावट जैसे परिणाम बदलते भारतीय समाज के अवांछित परिणामों को प्रतिबिंबित करते हैं। लेकिन साथ ही इन परिवर्तनों के कई स्वागत योग्य परिणाम भी हैं। उदाहरण के लिए, तर्कसंगतता में वृद्धि के कारण हठधर्मिता और अंध विश्वास में कमी आई है। सती, शिशुहत्या, मानव बलि जैसी सामाजिक कुरीतियाँ अतीत का हिस्सा बन चुकी हैं। इसी

तरह अस्पृश्यता और इस तरह के अन्य तर्कहीन भेदभाव की प्रथा में काफी गिरावट आई है।
दूसरे संदर्भ में लैंगिक तटस्थता के लिए बढ़ती चेतना ने समाज में महिलाओं की गरिमा की बहाली में एक बड़ी भूमिका निभाई है। अब वे सार्थक और आत्म निर्भर जीवन जीने में सक्षम हैं।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक मूल्य प्रणाली में धन सृजन की मुख्य धारा के कारण भौतिक प्रगति और गरीबी में कमी संभव हुई है।

इस प्रकार कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज परिवर्तन की स्थिति में है। इनमें से कुछ परिवर्तन वास्तव में स्वागत योग्य हैं, लेकिन उनमें से कुछ चिंता का कारण हैं। इसलिए समाज में सकारात्मक परिवर्तन को अधिकतम करने और नकारात्मक परिवर्तन को कम करने के प्रयास किए जाने चाहिए। साथ ही यह भी प्रयास करना चाहिए कि समाज जड़ों से जुड़ा रहे।

13. जो अपनी युवावस्था में सीखने की उपेक्षा करता है, वह अतीत को खो देता है और भविष्य के लिए मर चुका होता है।

यह आश्चर्य की बात है कि भारत जो कभी समृद्ध और शक्तिशाली संस्कृति के लिए जाना जाता था, मुट्ठी भर अंग्रेजों द्वारा उपनिवेश बन गया। ऐसा क्यों हुआ था?

हालांकि इसके कई कारण हैं, लेकिन एक बहुत ही मौलिक कारण वह ठहराव हो सकता है जिसने सीखने की प्रक्रिया के मामले में भारत को आच्छादित कर रखा था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ठप हो गया था (कुछ अपवादों को छोड़कर), बौद्धिक खोज अब वैसी नहीं रही जैसी कि प्राचीन काल में थी।

दूसरी ओर अंग्रेजों के पास पुनर्जागरण के बाद आए आधुनिकीकरण की धार थी। वैज्ञानिक ज्ञान में उनकी उपलब्धियों, राजनीति में लोकतंत्रीकरण ने उन्हें श्रेष्ठ बना दिया। परिणामस्वरूप वे भारत जैसे विशाल राष्ट्र को उपनिवेश बनाने में सफल रहे।

ऊपर दिए गए उदाहरण से पता चलता है कि सीखने की प्रक्रिया में ठहराव या उपेक्षा कैसे विनाशकारी परिणाम दे सकती है। इस निबंध में हम सीखने के महत्व, सही समय पर सीखने की उपेक्षा के दुष्परिणामों और सीखने के प्रति संभावित दृष्टिकोण पर चर्चा करने जा रहे हैं।

सीखने का महत्व

सीखना विकास और प्रगति के लिए मूलभूत आवश्यकता है। इतना ही नहीं, यह हमारे अस्तित्व के लिए भी जरूरी है। यह हमें अपने अतीत का आत्मनिरीक्षण करने, अतीत की गलतियों से सीखने और वहां से सकारात्मकता को आगे बढ़ाने में सक्षम बनाता है। इसके अलावा यह हमें वर्तमान में चुनौतियों का सामना करने और भविष्य के लिए एक मजबूत नींव बनाने में भी सक्षम बनाता है।

प्राचीन काल से ही अनेक विद्वानों और विचारकों ने विद्या के महत्व पर प्रकाश डाला है। सुकरात के अनुसार बिना जांचा-परखा जीवन जीने योग्य नहीं है। इसी तर्ज पर प्लेटो ने शिक्षा की एक अच्छी तरह से विस्तृत प्रणाली का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करना था। उन्होंने सीखने के संदर्भ और सीखने के समय पर समान जोर दिया।

भारतीय परंपरा में भी समयबद्ध विद्या को बहुत महत्व दिया गया है। भारतीय संस्कृति में 'गुरु-शिष्य' परंपरा लंबे समय से चली आ रही है। इस प्रणाली में व्यक्ति कम उम्र में ही गुरु के पास जाता है, युवावस्था तक ज्ञान प्राप्त करता है और आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के बाद गृहस्थ जीवन जीने के लिए वापस आता है। प्राचीन काल में भारत की अधिकांश बौद्धिक प्रगति इसी परंपरा के कारण हुई है

क्या होगा अगर सही समय पर सही सीखने की उपेक्षा की जाए? सही समय पर सही सीखने की उपेक्षा व्यक्ति के साथ-साथ मानवता को भी बहुत महंगी पड़ती है। इतिहास ने यह बार-बार दिखाया है। आज हम जिस वर्तमान चुनौती का सामना कर रहे हैं, वह भी उसी को दर्शाती है।

सीखने की उपेक्षा के साथ एक बड़ी समस्या यह है कि यह हमें हमारे अतीत से अलग कर देता है। एक बार जब हम अपने अतीत से कट जाते हैं तो हम अपनी गलतियों को सुधारने का अवसर खो देते हैं जो तब की गई थीं।

उदाहरण के लिए, भारत के प्राचीन अतीत से पता चलता है कि उत्तर-पश्चिम सीमांत की उपेक्षा कमजोर थी। उन पर फारस, ग्रीस और मध्य एशिया के आक्रमणकारियों ने हमला किया था। हालाँकि मध्यकाल में शासकों द्वारा इस गलती को नज़रअंदाज़ कर दिया गया था। परिणामस्वरूप, भारत को फिर से उत्तर-पश्चिम सीमांतों से आक्रमणों की ताजा लहरों का सामना करना पड़ा। यदि सबक सही समय पर सीखे गए होते और उचित प्रयास किए गए होते, तो हमें गजनी, गोरी और अन्य लोगों के हमले का सामना नहीं करना पड़ता।
एक और बड़ी समस्या है जो सीखने की उपेक्षा के साथ आती है - हम अपने अतीत की सकारात्मक उपलब्धियों को आगे बढ़ाने और उनका अनुकरण करने से चूक जाते हैं।

यह हमें हमारी अपनी विरासत से वंचित करता है जो हमारी वर्तमान समस्याओं और चुनौतियों को प्राप्त करने में मदद कर सकती थी।

उदाहरण के लिए, प्राचीन भारत की समृद्धि मूल रूप से वैज्ञानिक दृष्टिकोण, ज्ञान की खोज और भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति के बीच सही संतुलन के कारण थी। समय के साथ वैज्ञानिक उत्साह पीछे छूट गया। ज्ञान और प्रज्ञा की खोज ने भी अपना लोकप्रिय आधार खो दिया। इससे समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति में ठहराव आ गया। इसका परिणाम था 200 वर्षों का औपनिवेशिक शासन और सामाजिक-आर्थिक मोर्चे पर घोर पिछड़ापन।

उचित समय पर सीखने की उपेक्षा भविष्य के लिए भी गंभीर चुनौती खड़ी करती है। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है, नई-नई चुनौतियां सामने आती हैं। उन पर काबू पाने के लिए शमन और अनुकूलन के लिए आवश्यक उचित कौशल होना आवश्यक है। ये कौशल सेट तब आते हैं जब हम नियत समय में सीखने के पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अगर हम ऐसा करने में असफल रहे तो हो सकता है कि भविष्य में हमें यह अवसर न मिले। यह न केवल हमारी प्रगति बल्कि हमारे अस्तित्व के लिए भी गंभीर चुनौती पेश कर सकता है।

जलवायु परिवर्तन की बढ़ती चुनौती इसका एक उदाहरण है। प्रकृति लगातार मानव जाति को विकास के लिए जलवायु अनुकूल मार्ग सीखने और अनुसरण करने का संकेत दे रही है वरना मानव जाति पर आपदा की श्रंखला का इंतजार है।

एक अन्य संदर्भ में, औद्योगिक क्रांति 4.0 के उदय ने समय पर सीखने के महत्व पर प्रकाश डाला है। यदि हम अपने युवाओं को आईआर 4.0 के अनुरूप आवश्यक कौशल सेट आयात नहीं करते हैं, तो न केवल हम एक राष्ट्र के रूप में तेजी से आर्थिक प्रगति का अवसर खो देंगे, बल्कि हम अत्यधिक नौकरी के नुकसान और बेरोजगारी के संकट का भी सामना कर सकते हैं।

<u>सीखने का सही तरीका</u>

सीखने के महत्व और समय पर सीखने की उपेक्षा के नकारात्मक परिणामों पर चर्चा करने के बाद, आइए चर्चा करें कि सीखने के लिए सही दृष्टिकोण क्या होना चाहिए।

जैसा कि कई विद्वानों ने सुझाव दिया है कि प्लेटो, कबीर, महात्मा गांधी और अन्य जैसे महान विचारक हैं, सीखने की प्रक्रिया तीन महत्वपूर्ण स्तंभों पर टिकी है - सही संदर्भ, सही समय और सार्वभौमिकता।

सही संदर्भ का तात्पर्य है कि सही, निष्पक्ष और प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाती है। इसका व्यक्ति पर सशक्त प्रभाव होना चाहिए। वैज्ञानिक ज्ञान, साहित्य, इतिहास, नैतिक शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण का सही मिश्रण संदर्भ का हिस्सा बनना चाहिए। यह सुनिश्चित करेगा कि लोग एक ही समय में जुड़े रहें और भविष्य के लिए तैयार रहें।

सही समय का तात्पर्य है कि सीखने की प्रक्रिया कम उम्र में ही शुरू हो जानी चाहिए। शैक्षणिक रूप से बच्चों की कम उम्र सीखने का परिचय देने का सबसे अच्छा समय साबित होता है। यह सीखने की प्रक्रिया को तेज और स्थायी बनाता है।

सार्वभौमिकता सीखने का तीसरा स्तंभ है। ऐसी प्रणाली का कोई अर्थ नहीं है जो सीखने की प्रक्रिया से एक वर्ग को बाहर करती है। ज्ञान कोई विशेषाधिकार नहीं बल्कि सभी के लिए आवश्यक अधिकार है।

<u>नई शिक्षा नीति 2020 की केस अध्ययन</u>

NEP 2020 सीखने के तीन स्तंभों पर समान रूप से ध्यान केंद्रित करने की कोशिश करता है। इसका एक उद्देश्य सार्वभौमिक सीखने के अवसर को सुनिश्चित करना है। साथ ही यह भारत को भविष्य के लिए तैयार बनाने के लिए व्यक्तित्व विकास, 21वीं सदी के कौशल के लिए सही कौशल प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करता है। यह सीखने की प्रक्रिया में समय के पहलू पर भी ध्यान केंद्रित करता है। इसलिए यह प्ले स्कूल या प्री-प्राइमरी स्कूल की अवधारणा पर जोर देता है। यह स्नातक, स्नातकोत्तर स्तरों पर जोर देकर व्यापक शिक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। यह सुनिश्चित करने के लिए है कि ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया में कम उम्र की क्षमताओं का सक्रिय रूप से उपयोग किया जाए।

<u>निष्कर्ष</u>

इस प्रकार सीखने के विभिन्न आयामों पर चर्चा करने के बाद हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सीखने की निरंतर खोज ही हमें सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाती है। इसलिए हमें इसे नजरंदाज नहीं करना चाहिए। यदि हम इसकी उपेक्षा करते हैं तो शायद हमारी वर्तमान वास्तविकता भविष्य में हमारे लिए एक दूर का सपना बन सकती है। और अगर हम इस पर उचित और समय पर ध्यान दें तो हमारे सारे सपने एक दिन हकीकत बन जाएंगे।

14. गरीबी को संबोधित करना अपेक्षाकृत सस्ता है लेकिन अनदेखी करना अविश्वसनीय रूप से महंगा है

लोग केवल कंकालों से अधिक नहीं थे। हंगरी, असहाय, जैसा कि वे थे, केवल पीड़ित होने के लिए जीवित छोड़ दिया। उनके पास मानवीय गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने शरीर को ढकने के लिए कपड़े तक नहीं थे। शिक्षा एक दूर का सपना था, स्वास्थ्य सेवा की पहुंच यूटोपिया थी। वे बेचारे इतने दुर्बल थे कि अपनी

दयनीय दुर्दशा को ऊँचे स्वर में कह सकने की शक्ति उनमें न थी।

यह तस्वीर औपनिवेशिक भारत के अनगिनत गाँवों की अतिशयोक्ति लग सकती है। कोई आश्चर्य नहीं, महात्मा गांधीजी ने गरीबी के इस बर्बर खेल को देखकर इसे (गरीबी) हिंसा का सबसे बुरा रूप बताया।

इस निबंध में हम चर्चा करेंगे कि गरीबी क्या है, इसके विभिन्न आयाम क्या हैं। आगे हम उन कारणों पर गौर करेंगे कि हमें इसकी उपेक्षा क्यों नहीं करनी चाहिए। इसके अलावा हम इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि क्या यह गरीबी को दूर करने के लिए बहुत अव्यवहार्य और महंगा मामला है? और अंत में हम गरीबी को दूर करने के कुछ लाभों और तरीकों पर चर्चा करेंगे।

गरीबी और उसके विभिन्न आयाम

गरीबी को आम तौर पर किसी व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता जैसे भोजन, कपड़ा, आश्रय को सुरक्षित करने में असमर्थता के रूप में समझा जाता है। कई बार स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी सेवाओं को भी इसमें शामिल किया जाता है।

हालाँकि बढ़ती सामाजिक चेतना के साथ, अमर्त्य सेन जैसे विद्वानों ने गरीबी को क्षमता के अभाव के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में गरीबी को बहुत व्यापक रूप में समझा जाता है। इस संबंध में गरीबी हमें वह होने और बनने से वंचित करती है जो हम होने या बनने के लायक हैं।

क्षमता का यह अभाव विभिन्न रूपों में प्रकट होता है जैसे - खराब स्वास्थ्य परिणाम, खराब सीखने के परिणाम, दूसरों के बीच खराब कौशल संचय। सीधे शब्दों में कहें तो यह व्यक्ति को मुख्यधारा की सभ्यताओं की प्रगति में आत्मसात करने से वंचित करता है और उसे अंतिम रूप से अनुपयुक्त बना देता है।
जब हम गरीबी की धारणा को समाज के दृष्टिकोण से देखते हैं तो हम पाते हैं कि यह समाज में दक्षता, उत्पादकता और सामंजस्य के अभाव की ओर ले जाती है। यह अंततः समाज के अत्यधिक पिछड़ेपन, असमानता के उच्च प्रसार, नैतिक मानकों में गिरावट और सामाजिक तनाव के स्तर में वृद्धि के रूप में परिणत होता है।

इस संदर्भ में अफ्रीकी देशों का मामला काफी प्रासंगिक है। अफ्रीकी देश जैसे नाइजीरिया, सूडान, दक्षिण सूडान, कांगो आदि को दुनिया के सबसे अधिक गरीबी से ग्रस्त देशों में माना जाता है। ये देश लगातार बहुआयामी गरीबी सूचकांक की सबसे निचली सीढ़ी पर हैं। इन देशों में प्राकृतिक संसाधनों में अत्यधिक समृद्ध होने के बावजूद आर्थिक प्रगति बहुत कम रही है। जातीय संघर्ष, राजनीतिक अस्थिरता अपवाद के बजाय मानक हैं। घोर गरीबी के बीच कुछ बेहद अमीर लोगों की मौजूदगी भी साफ दिखाई देती है जो वहां की घोर असमानता को उजागर करती है।

जब हम गरीबी की बात करते हैं तो अपराधों की बढ़ती संख्या और उनके साथ होने वाले मानवाधिकारों के हनन को नजरअंदाज करना हमारे हाथ में है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार अधिकांश सजायाफ्ता और विचाराधीन कैदी सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के हैं। इससे पता चलता है कि गरीबों को न केवल अपराध करने के लिए धकेला जाता है, बल्कि वे प्रतिशोधी मुकदमों में भी फंस जाते हैं और शारीरिक यातना जैसे अत्यधिक मानवाधिकारों के दुरुपयोग के अधीन हो जाते हैं।

बच्चों और महिलाओं का जीवन शायद गरीबी से सबसे अधिक प्रभावित होता है। बच्चों का बचपन छिन गया है। उनकी बौद्धिक यात्रा शुरू होने से पहले ही समाप्त कर दी जाती है और उन्हें बाल श्रम में धकेल दिया जाता है।
इसी तरह गरीबी आने पर महिलाओं की दुर्दशा भी उतनी ही दयनीय हो जाती है। लैंगिक हिंसा का चरम रूप, जबरन वेश्यावृत्ति, समझौता स्वास्थ्य देखभाल महिलाओं के जीवन की कठोर वास्तविकता बन जाती है।

इस तरह हम देखते हैं कि गरीबी को नजरअंदाज करना हाथ है। यदि हम गरीबी को अनदेखा करने का साहस करते हैं तो हम मानवता की भौतिक, बौद्धिक और नैतिक प्रगति को जोखिम में डाल देंगे।

गरीबी को संबोधित

गरीबी से जुड़े आयामों, परिणामों और जोखिमों पर चर्चा करने के बाद आइए इसे संबोधित करने की संभावनाओं पर चर्चा करें। सबसे पहले तो यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि गरीबी उन्मूलन कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए लगातार आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रयासों की आवश्यकता है।

आर्थिक स्तर पर इसके लिए संसाधन आवंटन की वर्तमान प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है।
हमें बाजार के कट्टरवाद के रास्ते से हटने की जरूरत हो सकती है। जैसा कि महात्मा गांधी ने सुझाव दिया था, ट्रस्टीशिप अवधारणा जैसे राष्ट्रों का अनुकरण किया जाना चाहिए।

राजनीतिक स्तर पर अवसर की समानता अक्षरशः और भावना से सुनिश्चित की जानी चाहिए। दलितों, आदिवासियों, महिलाओं जैसे सामाजिक रूप से छूटे हुए समुदायों पर हुए ऐतिहासिक नुकसान को सकारात्मक कार्यों के माध्यम से तेजी से पलटा जाना चाहिए।

सामाजिक स्तर पर पितृसत्ता, छुआछूत, जाति आधारित पदानुक्रम जैसी संकीर्ण नैतिकताओं पर संगठित और व्यवस्थित प्रहार किए जाने चाहिए।
शैक्षिक मोर्चे पर क्षमता के अभाव के संकट को दूर करने के लिए प्रासंगिक कौशल के साथ सार्वभौमिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित

किया जाना चाहिए। भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति 2020 इस संबंध में एक नोबेल हस्तक्षेप है।

इसी तरह सार्वजनिक स्वास्थ्य के मोर्चे पर उपचारात्मक दृष्टिकोण के बजाय सक्रिय, पूर्व-खाली दृष्टिकोण का पालन किया जाना चाहिए। सार्वभौमिकता और सामर्थ्य का तत्व प्रमुख प्रेरणा शक्ति होना चाहिए। आयुष्मान भारत योजना इस दिशा में एक अच्छा कदम है।

गरीबी को समाप्त करने के लिए आवश्यक इस व्यापक ढांचे पर विचार करने पर, यह तार्किक रूप से बहुत स्पष्ट है कि उपायों के लिए कुछ लागत की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन अगर हम उन जबरदस्त परिणामों पर विचार करते हैं जो इसे अनदेखा कर सकते हैं तो वे काफी योग्य हैं। शायद इसी वजह से सतत विकास लक्ष्यों में गरीबी को लक्ष्य नंबर 1 के रूप में शामिल किया गया है।

इस प्रकार हमने देखा कि गरीबी के कई आयाम हैं लेकिन क्षमता का अभाव इसके केंद्र में है। गरीबी अपने आप में एक दुख है और इसके प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में यह मानवता के लिए अनगिनत अन्य कष्टों को भी जन्म देती है। इसलिए मानवता को अपनी पहली प्राथमिकता में गरीबी के मुद्दे को संबोधित करना चाहिए। यदि हम अपनी पीढ़ी में ऐसा करने में सफल हो जाते हैं तो हम न केवल वर्तमान युग की बल्कि आने वाली मानवजाति की पीढ़ियों की भी महान सेवा करेंगे।

15.बड़ी विपत्ति के बीच में, महान अवसर निहित होता है

यह 1991 का वर्ष था। भारत 1947 के बाद से अपने अब तक के सबसे खराब आर्थिक संकट का सामना कर रहा था। विदेशी मुद्रा भंडार लगभग राजकोषीय घाटे, बेरोजगारी, गरीबी, बैंकों, सार्वजनिक उपक्रमों को खाली कर दिया गया था - सभी मामलों में निराशाजनक स्थिति पेश कर रहे थे। यह राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक अशांति द्वारा जोड़ा गया था।

ऐसे अंधेरे समय के दौरान, भारत ने अपनी नीतियों में संरचनात्मक परिवर्तन की घोषणा की। एलपीजी सुधार पेश किए गए। नई आर्थिक रोशनी का द्वार खुल गया। केवल 20 वर्षों की अवधि में, भारत सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा। हिंदू ग्रोथ रेट जैसे विशेषण अतीत की बातें थीं। भारत पहले ही विकास, आधुनिकीकरण और प्रगति की स्थायी यात्रा पर निकल चुका था।

1991 के संकट के बाद से भारत ने क्या हासिल किया और कितनी दूर तक हासिल किया, यह बहस का विषय हो सकता है। हालाँकि, संकट के साथ खुलने वाले अवसरों के प्रवाह पर बहुत कम तर्क दिया जा सकता है।
इस निबंध में हम उन अवसरों की संभावनाओं पर चर्चा करेंगे जो हमारे सामने आने वाली प्रतिकूलताओं में अंतर्निहित हैं। आगे हम उन प्रतिकूलताओं पर भी चर्चा करेंगे जो आज हमें घेरे हुए हैं और उनमें जो अवसर छिपे हुए हैं।

विपत्तियाँ पूरी तरह से अंधकारमय नहीं होतीं
जब विपत्तियाँ उनके दरवाजे पर दस्तक देती हैं तो लोग अक्सर बहुत उदास और असहाय महसूस करते हैं। हालांकि, वे हमेशा अंधेरे और असहाय नहीं होते हैं। यदि वे अपने साथ कठिनाइयाँ लाते हैं, तो वे आत्मनिरीक्षण, सुधार और स्वयं को बढ़ाने का अवसर भी लाते हैं।

कठिन समय दूसरों के बीच हमारे धैर्य स्तर, हमारे कौशल सेट, हमारे भावनात्मक सहनशक्ति का परीक्षण करता है। वे हमें खुद को सुधारने के लिए मजबूर करते हैं। वे हमारे अंदर दयनीय स्थिति को बदलने और सफल और सार्थक जीवन की लंबी यात्रा शुरू करने की ज्वलंत इच्छा को प्रज्वलित करते हैं।

ब्रेल की प्रेरक कहानी को कौन भूल सकता है। वे स्वयं एक अंधे व्यक्ति थे। हालाँकि उन्हें पढ़ने और लिखने का बड़ा शौक था। उन्होंने इसे अपने जीवन का एकमात्र मकसद एक ऐसी तकनीक की इच्छा के रूप में लिया, जिससे हर अंधा व्यक्ति पढ़ और लिख सके। आखिरकार उन्होंने ब्रेल लिपि का आविष्कार किया जिसने अनगिनत अंधे लोगों को पढ़ने और लिखने में सक्षम बनाकर उनकी बौद्धिक यात्रा शुरू करने में मदद की।
ऊंचाई वाले पहलुओं को बढ़ाने के अवसर के अलावा, प्रतिकूलताएं नेतृत्व कौशल में सुधार करने का अवसर भी प्रदान करती हैं। अक्सर कहा जाता है कि नेता कठिन समय में पैदा होते हैं।

इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब महान नेताओं का जन्म सबसे कठिन समय में हुआ। चाहे बुद्ध का मामला हो या महात्मा गांधी का मामला, समय की कठिन लहरों ने नेताओं के उभरने के लिए अनुकूल माहौल बनाया है।

अगर फ्रांस में अराजकता जैसी स्थिति न होती तो क्या वहां कोई नेपोलियन पैदा हो सकता था? रंगभेद की अभिशप्त प्रथा के बिना क्या नेल्सन मंडेला इतिहास में इतने बड़े व्यक्ति बन जाते? शायद नहीं।

प्रतिकूलताएँ केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए अवसर लाती हैं। यह हमें सामाजिक संबंधों पर फिर से विचार करने के लिए ठोस कारण प्रदान करता है। वे हमें एक समाज के रूप में सामाजिक संरचना की बुराइयों को त्यागने और अधिक उचित और मानवीय आधार पर सामाजिक जुड़ाव के नियमों को फिर से परिभाषित करने के लिए मजबूर करते हैं।

19वीं शताब्दी में भारतीय पुनर्जागरण के उदय का श्रेय उस समय की दयनीय और दयनीय सामाजिक परिस्थितियों को दिया जा सकता है। इस संदर्भ में समाज ने राजा राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले और अन्य जैसे नेताओं को जन्म दिया जिन्होंने उस समय की प्रचलित सामाजिक बुराइयों को उजागर करने और उखाड़ने में सराहनीय काम किया। भारत के 21वीं सदी का आधुनिक समाज उनके योगदान के लिए बहुत अधिक ऋणी है जो उन्होंने सामाजिक दृष्टिकोण में तर्कसंगतता, मानवीय गरिमा और लैंगिक समानता को विकसित करने में दिया।

प्रतिकूलताओं के बादल फिलहाल धूप को ग्रहण कर सकते हैं, लेकिन उनमें अवसर का जल हमेशा बना रहता है। यह राष्ट्रों के लिए भी सत्य है।

कोविद -19 के अभिशाप ने भारत को एक ठहराव में ला दिया। भारत जैसा चहल-पहल भरा देश पीड़ा की खामोशी और दहशत की अराजकता की चपेट में आ गया। लेकिन यह प्रतिकूलता अपने साथ अवसर का बीज भी लाई।
राष्ट्र ने कोविड योद्धाओं के समर्पण और उत्साह को देखा। वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं ने टीके विकसित करने की चुनौती ली और ऐसा करने में सफल रहे। इसके बाद कोविड योद्धाओं ने यह सुनिश्चित किया कि हर पात्र व्यक्ति को वैक्सीन की खुराक दी जाए। और 9 महीने की छोटी अवधि के भीतर भारत 100 करोड़ कोविड डोज देने में कामयाब रहा।

कोविड की रोकथाम और नियंत्रण में लचीलापन दिखाने के अलावा, भारत ने महामारी को परिवर्तनकारी संरचनात्मक परिवर्तन लाने के एक अवसर के रूप में लिया। महत्वाकांक्षी आत्म निर्भर भारत अभियान को 20 लाख करोड़ के बजटीय परिव्यय के साथ शुरू किया गया था। इस अभियान का मुख्य जोर भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर, लचीला, समावेशी और प्रगतिशील बनाने पर है।

प्रतिकूलताएँ जिनका हम सामना करते हैं, अवसर जो हमारे पास हैं

दुनिया आज कई मोर्चों पर कई चुनौतियों का सामना कर रही है। लेकिन हमेशा की तरह, ये चुनौतियाँ हमारे लिए बहुत सारे अवसर भी प्रस्तुत करती हैं।

राजनीतिक मोर्चे पर हम निरंकुश लक्षणों का उदय देखते हैं। रूस-यूक्रेन संघर्ष के रूप में यूरोप में युद्ध की वापसी भू-राजनीतिक परिदृश्य में मौजूदा दोष रेखाओं का सुझाव देती है। इसी प्रकार श्रीलंका में राजनीतिक अशांति दक्षिण-एशिया में राजनीति की दु:खद स्थिति का द्योतक है।

हालाँकि ये चुनौतियाँ हमारे लिए वैश्विक शासन संस्थानों विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र के सुधार पर विचार करने का अवसर भी प्रस्तुत करती हैं। साथ ही यह लोगों को उनके लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति जागरूक होने के लिए एक ठोस मामला पेश करता है।

पर्यावरणीय गिरावट की गंभीर स्थिति भी हमारे सामने विकास की उन रणनीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर करने वाला आधार प्रस्तुत करती है जिनका हम पालन करते हैं। विशेषकर युवाओं में जलवायु चेतना का उदय उस जलवायु संकट का परिणाम है जिसका हम आज सामना कर रहे हैं। ग्रेटा थुनबर्ग इस संबंध में एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

भारत के संदर्भ में बात करें तो हमें राजनीति, अर्थव्यवस्था, तकनीकी परिवर्तन, स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य क्षेत्रों में प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि समस्याओं की लंबी सूची एक बार के लिए भय पैदा कर सकती है लेकिन वास्तव में यह हमें निरंतर सुधार और परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू करने के लिए प्रस्तुत करती है।

नौकरशाही में राजनीति और भ्रष्टाचार के बढ़ते अपराधीकरण को लोगों के बीच भ्रष्टाचार के प्रति शून्य सहिष्णुता की संस्कृति विकसित करने, सच्चे लोकतंत्र के मूल्यों को स्थापित करने और पूरे सिस्टम को साफ करने के लिए उचित तंत्र लाने के अवसर के रूप में देखा जा सकता है। इसमें चुनाव प्रणाली, न्यायपालिका, पुलिस और नौकरशाही की अन्य शाखाओं में सुधार शामिल हो सकते हैं।
इसी तरह लिंग संबंधी हिंसा, जाति आधारित भेदभाव आदि के उदाहरण समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मौलिक सिद्धांतों के आधार पर समाज के पक्ष में लोकप्रिय राय बनाने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

इसी तरह बहुआयामी गरीबी, खराब शिक्षा और स्वास्थ्य परिणामों पर खराब परिणामों को स्वास्थ्य, शिक्षा और क्षमता निर्माण के संस्थानों में परिवर्तनकारी सुधारों के लिए मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में लिया जाना चाहिए।

इसके अलावा, भारत में व्याप्त अनप्लेबिलिटी के बढ़ते संकट को हर भारतीय को 21वीं सदी के कौशल प्रदान करने के लिए सबक के रूप में लिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

इस प्रकार, अब तक हमने देखा कि प्रतिकूलताएँ आमतौर पर छिपे हुए अवसरों के अलावा और कुछ नहीं होती हैं। बड़ी विपत्ति है, महान अवसर है। प्रतिकूलताएँ हमारे सामने दो विकल्प प्रस्तुत करती हैं - 1. सुधार और श्रेष्ठता या 2. हार मान लेना और नष्ट हो जाना।
चुनाव हमारा है। जो चरित्र में 'सोना' हैं, वे विपत्तियों की ज्वाला को 'कुंदन' के रूप में उभरने के लिए ले जाते हैं और जो अपने चरित्र में 'लकड़ी' हैं, वे 'राख' में बदल जाते हैं।

16.भारतीय कृषि: चुनौतियां और समाधान

भारत गांवों में बसता है, महात्मा गांधी ने एक बार कहा था। गाँवों में रहने वाले अधिकांश भारतीयों का मुख्य आधार कृषि है। सामान्य तौर पर, लगभग 60% भारतीय अपनी आजीविका के लिए कृषि और संबद्ध गतिविधियों पर निर्भर हैं। बिहार जैसे राज्यों में, 70% से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। इसके अलावा, देश की जीडीपी का लगभग 18% कृषि क्षेत्र से आता है। इसके अलावा, भारत में खाद्य सुरक्षा, पोषण सुरक्षा, समावेशी विकास सुनिश्चित करने के लिए कृषि क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण है।

हालाँकि, भारत के लिए इतना महत्वपूर्ण स्तंभ होने के बावजूद, कृषि क्षेत्र को कई तरह की चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस निबंध में, हम कृषि क्षेत्र के सामने आने वाली चुनौतियों पर चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम इस संबंध में सरकार द्वारा किए गए उपायों पर चर्चा करेंगे। और अंत में, हम भारतीय कृषि को मजबूत और जीवंत बनाने के लिए संभावित समाधानों का पता लगाने का प्रयास करेंगे।
कृषि क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है: इनपुट स्तर पर; उत्पादन स्तर पर और; उत्पादन के बाद के स्तर पर। आइए एक-एक करके उन पर चर्चा करें।

इनपुट स्तर पर कई समस्याओं की पहचान की जा सकती है। ऐसे में कृषि जोतों का घटता आकार एक बड़ी समस्या है। इसके अतिरिक्त भूमि का वितरण भी असमान है। वर्तमान में भारत में 88% से अधिक किसान छोटे या सीमांत हैं। इसके अलावा, नीचे के 80% किसानों के पास केवल 40% कृषि भूमि है। इसके अलावा बढ़ते मरुस्थलीकरण और घटती मिट्टी की उर्वरता ने कृषि की भूमि संबंधी चुनौतियों की गंभीरता को बढ़ा दिया है।

भूमि के बाद कृषि में अगली प्रमुख लागत बीज है। बीजों से जुड़ी कुछ चुनौतियाँ भी हैं जिनसे भारतीय कृषि क्षेत्र जूझ रहा है। उदाहरण के लिए, उच्च गुणवत्ता वाले बीज जैसे HYV बीज की उपलब्धता बड़े किसानों तक सीमित है। वे कई छोटे और सीमांत किसानों की पहुंच से बाहर हैं। इसके अलावा, GM किस्मों का प्रसार भी बहुत सीमित है।
यदि हम सिंचाई की बात करें तो हम पाएंगे कि भारत में 45% से अधिक कृषि भूमि वर्षा आधारित है। यह भारतीय कृषि क्षेत्र की समग्र भेद्यता को बढ़ाता है।

इसके अतिरिक्त, विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के बीच संस्थागत ऋण की अपर्याप्त उपस्थिति और व्यापक सूचना अंतराल और सूचना विषमता अन्य कारक हैं जो कृषि क्षेत्र की दुर्दशा को बढ़ाते हैं।

इनपुट स्तर से जुड़ी चुनौतियों पर चर्चा करने के बाद, उत्पादन स्तर पर चुनौतियों पर चर्चा करते हैं। भारतीय कृषि क्षेत्र काफी हद तक निर्वाह प्रकार का है। भारत में कृषि मशीनीकरण बहुत कम केवल 30-35% है जो संयुक्त राज्य अमेरिका के 80-90% या ब्राजील के 50-60% से बहुत कम है। साथ ही, उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग भी अनुशंसित मानकों के अनुसार नहीं किया जाता है। उदाहरण के लिए, उर्वरकों का एनपीके अनुपात अत्यधिक विकृत है। इसके अलावा, मोनोकल्चर, अत्यधिक जुताई, बाढ़ सिंचाई पद्धति आदि की अस्वास्थ्यकर प्रथाएं उत्पादन चरण को अक्षम और जलवायु को अमित्र बनाती हैं। वे न केवल उत्पादन की लागत में वृद्धि करते हैं, बल्कि कम उत्पादकता, मिट्टी के कटाव, भूमि क्षरण, कार्बन उत्सर्जन, वायु प्रदूषण आदि में भी योगदान करते हैं।

अंतिम लेकिन कम नहीं, कृषि की कटाई के बाद का चरण भी कृषि क्षेत्र के स्वस्थ विकास में एक महत्वपूर्ण बाधा उत्पन्न करता है। भारत में भंडारण और रसद वांछित स्तर के नहीं हैं। इससे बड़े पैमाने पर कटाई के बाद का नुकसान होता है जिससे एक ओर भोजन की बर्बादी होती है और दूसरी ओर भोजन की लागत में वृद्धि होती है।

इसके अलावा, कृषि बाजार की खंडित प्रकृति कीमतों में उतार-चढ़ाव, खाद्य मुद्रास्फीति, किसानों द्वारा खराब कीमत वसूली जैसी समस्याएं पैदा करती है। बड़ी संख्या में बिचौलियों की उपस्थिति, किसानों की खराब सौदेबाजी क्षमता, खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के साथ कम एकीकरण आदि से समस्या और बढ़ जाती है।

इस प्रकार, जैसा कि हम देखते हैं, कृषि क्षेत्र से जुड़ी कई चुनौतियाँ हैं जिनका समाधान किए जाने की आवश्यकता है। सरकार ने इस संबंध में कई पहल की हैं जिनके सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं। आइए उनमें से कुछ पर चर्चा करें।

भूमि वितरण को न्यायसंगत बनाने के लिए सरकार ने भूमि सुधार अधिनियम लाए जिन्हें राज्य सरकारों द्वारा लागू किया गया था। उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए हरित क्रांति का सूत्रपात किया गया। खाद्य फसलों की सार्वजनिक खरीद और पीडीएस प्रणाली के माध्यम से उनके बाद के वितरण की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा सरकार उर्वरकों के लिए सब्सिडी प्रदान कर रही है और आजादी के बाद से कई सिंचाई परियोजनाएं चला रही है।
हाल के दिनों में, सरकार ने किसानों की आय को दोगुना करने को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में घोषित किया है। इस संबंध में इसने सिफारिश देने के लिए दलवई पैनल का गठन किया। इसके अतिरिक्त, विभिन्न आयामों में कृषि क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियों का समाधान करने के लिए पीएम-किसान, पीएम-कृषि सिंचाई योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, पीएम फसल बीमा योजना, परम्परागत कृषि योजना, एमएसपी घोषणा, ई-एनएएम पोर्टल आदि को लागू किया जा रहा है। . निश्चित रूप से, इन हस्तक्षेपों के सकारात्मक परिणाम मिले हैं। फिर भी, और अधिक

की आवश्यकता है। इस संबंध में, आइए कुछ संभावित समाधानों पर चर्चा करें।

दलवई पैनल के अनुसार, कृषि को एक उद्यम के रूप में देखने की आवश्यकता है। कृषि की लाभप्रदता बढ़ाने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए ठोस प्रयास किए जाने चाहिए। उदाहरण के लिए, भूमि जोत के समेकन, भूमि रिकॉर्ड के डिजिटलीकरण, उर्वरक आदानों को संतुलित करने और जैविक और प्राकृतिक खेती के लिए प्रयास करने से भूमि से जुड़ी चुनौतियों को दूर करने में मदद मिल सकती है। इसी तरह, सूक्ष्म सिंचाई, नदियों को आपस में जोड़ने की परियोजनाओं पर जोर देने और लघु सिंचाई परियोजनाओं को शुरू करने से कृषि क्षेत्र की पानी की जरूरतों को पूरा करने में मदद मिल सकती है।

इसके अलावा, बीज विकास और वितरण को अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सार्वभौमिक कवरेज के लक्ष्य के साथ गुणवत्तापूर्ण बीज प्रसार को सक्रिय रूप से लिया जाना चाहिए। साथ ही, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ कृषि का बेहतर और व्यापक एकीकरण किया जाना चाहिए। इससे कृषि मशीनीकरण में वृद्धि, सूचना विषमता में कमी, दूसरों के बीच बेहतर बाजार एकीकरण सुनिश्चित होना चाहिए। बेहतर मूल्य प्राप्ति के लिए एमएस स्वामीनाथन समिति, शांता कुमार समिति और दलवई पैनल की अनुशंसा पर विचार किया जाना चाहिए।

अर्थव्यवस्था के किसी भी अन्य क्षेत्र की तरह, कृषि क्षेत्र को भी अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रगतिशील सुधारों की आवश्यकता है। इसलिए उसके लिए सकारात्मक माहौल बनाना चाहिए। साहसिक राजनीतिक कदम उठाना भी समय की मांग है। उदाहरण के लिए, सरकार को विभिन्न हितधारकों के साथ उचित परामर्श के बाद कृषि कानूनों को फिर से लागू करना चाहिए।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। इसकी समस्या का समाधान किए बिना, भारत के लिए एक समाज या एक अर्थव्यवस्था के रूप में प्रगति करना कठिन है। जैसा कि भारत ने अपनी स्वतंत्रता के 75वें मील के पत्थर को पार कर लिया है, उसे गांधी और अंबेडकर जैसे अपने पूर्वजों के सपनों को पूरा करने के लिए कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता देनी चाहिए और उसमें क्रांति लानी चाहिए।

17.भारत के किसान: हमारा गौरव

प्राचीन काल से ही कृषि भारतीयों का मुख्य आधार रही है। कृषक समुदाय ने भारत के सामाजिक, आर्थिक और सभ्यतागत विकास और प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आजादी के बाद के दौर में भी किसानों की भूमिका और महत्व कम नहीं हुआ है। दरअसल, नए और जीवंत भारत के निर्माण में किसानों की भूमिका को महसूस करते हुए और स्वीकार करते हुए पूर्व PM लाल बहादुर शास्त्री ने उन्हें अपने प्रसिद्ध नारे "जय जवान जय किसान" में शामिल किया।

इस निबंध में, हम देखेंगे कि हमारे किसानों को हमारे राष्ट्र का गौरव क्यों माना जाता है। हम विभिन्न क्षेत्रों में उनके योगदान को देखेंगे। इसके अलावा हम किसानों की मौजूदा स्थितियों की भी पड़ताल करेंगे। इस संदर्भ में हम किसानों की बेहतरी के लिए सरकार द्वारा की गई पहलों पर भी चर्चा करेंगे। और अंत में हम किसानों की स्थिति में सुधार के लिए कुछ सुझावों का पता लगाने की कोशिश करेंगे।

किसानों को अपना गौरव मानने के कई कारण हैं। एक तो वे पूरे देश के अन्नदाता हैं। देश की खाद्य और पोषण सुरक्षा लगभग पूरी तरह से किसानों पर निर्भर है। स्वस्थ और पौष्टिक भोजन प्रदान करके वे न केवल हमारी भूख को दूर रखते हैं बल्कि कुपोषण को रोककर सार्वजनिक स्वास्थ्य को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

इसके अलावा, अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए भी किसान जिम्मेदार हैं। वे भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 18.8% योगदान करते हैं। इसके अलावा वे कई उद्योगों को कच्चा माल प्रदान करते हैं और भारत के द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र के लिए नींव के रूप में कार्य करते हैं। उर्वरक उद्योग, रसायन और कीटनाशक उद्योग और बीज उद्योग की मांग पैदा करने में किसानों का बहुत महत्व है। इतना ही नहीं, कृषक समुदाय खाद्य पदार्थों की एक जीवंत आपूर्ति श्रृंखला बनाता है जो खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, कपड़ा उद्योग, चमड़ा और टेनरी उद्योग आदि के विकास के लिए बहुत आवश्यक है, जिनमें से अधिकांश FMCG क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इसके अलावा, कई सिंचाई परियोजनाओं के लिए सक्षम कारक के रूप में उनकी भूमिका देश के समग्र बुनियादी ढांचे के विकास की प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है।

अगर भारत के निर्यात में किसानों की भूमिका की बात करें तो यह भी बहुत अच्छा है। भारत की खाद्य वस्तुएं भारत की निर्यात टोकरी का एक बड़ा हिस्सा बनाती हैं और विदेशी मुद्रा अर्जित करने और भुगतान संतुलन को स्वस्थ रखने में योगदान करती हैं।

हालांकि आमतौर पर इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है, लेकिन भारत की विदेश नीति के निर्माण में किसानों की भूमिका भी उल्लेखनीय है। ये भारत के किसान ही हैं जिनके खून-पसीने से भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर देश बना है। इसकी अनुपस्थिति में भारत खाद्य पदार्थों के विदेशी आयात पर अत्यधिक निर्भर होता। लंबे समय में ऐसी निर्भरता स्वतंत्र विदेश नीति बनाने की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालती है और देश की रणनीतिक स्वायत्तता को बाधित करती है। 1960 के दशक

के प्रारंभ में भारत ने इस कारण जो दबाव झेला वह इसका प्रमाण है।

हमारे देश और समाज के विभिन्न हितों की सेवा में हमारे किसानों के इन दूरगामी योगदानों के बावजूद, उन्हें कई मोर्चों पर कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उनमें से कुछ पर निबंध के बाद के पैराग्राफ में चर्चा की गई है।

भारत के किसानों का कार्यबल 54% है, लेकिन सकल घरेलू उत्पाद में उनका योगदान निराशाजनक रूप से कम है - केवल 18.8%। इसके अलावा, किसानों की घटती भूमि जोत चिंता का एक बड़ा कारण है जो लाभदायक कृषि करने की उनकी संभावनाओं को कम करती है। इसके अलावा, विषम भूमि वितरण लगभग 88% किसानों को छोटे और सीमांत किसानों की श्रेणी में रखता है। यहां तक कि भारत में भूमिहीन कृषि श्रमिकों की संख्या काफी अधिक है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन, उर्वरकों के असंतुलित उपयोग और दोषपूर्ण सिंचाई तकनीकों के कारण भूमि की घटती उर्वरता ने किसानों के लिए भूमि संबंधी समस्याओं की गंभीरता को बढ़ा दिया है।

यदि हम अन्य कृषि आदानों के बारे में बात करते हैं तो हम देख सकते हैं कि लगभग 61% किसान वर्षा आधारित कृषि पद्धतियों पर निर्भर हैं और उनके पास सिंचाई की पर्याप्त सुविधा नहीं है। यह भारत के किसानों को फसल की विफलता के लिए अतिसंवेदनशील बनाता है। इसके अलावा छोटे और सीमांत किसानों के बीच गुणवत्ता वाले HYV बीज और अन्य GM फसल बीज का प्रसार निराशाजनक रूप से कम है। यह समग्र उत्पादकता और लचीलेपन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसके अलावा, संस्थागत ऋण की कम उपलब्धता जो किसान को स्थानीय साहूकारों से ऋण लेने के लिए मजबूर करती है, जिसके परिणामस्वरूप कई बार किसान कर्ज के जाल में फंसकर आत्महत्या कर लेते हैं।

उत्पादन चरण के दौरान भी किसानों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले, खराब फसल विविधीकरण है जो मुख्य रूप से सही जानकारी की खराब उपलब्धता और किसानों को पर्याप्त ऋण के कारण है। दूसरे, भारत में कृषि मशीनीकरण दर भी लगभग 30-35% है जो संयुक्त राज्य अमेरिका या ब्राजील की तुलना में काफी कम है जहां यह 70-80% से ऊपर है। इन चुनौतियों का शुद्ध परिणाम उत्पादन की उच्च लागत, कम उत्पादकता और किसानों के लिए कम लाभप्रदता है।

इसके अलावा, पर्याप्त भंडारण और लॉजिस्टिक इंफ्रास्ट्रक्चर के अभाव में फसल कटाई के बाद होने वाला उच्च नुकसान किसानों के लिए चिंता का एक बड़ा कारण है। खंडित कृषि बाजार और अधिक संख्या में बिचौलियों की उपस्थिति किसानों से सही पारिश्रमिक छीन लेती है। साथ ही, खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों, कपड़ा उद्योग, फार्मा उद्योग आदि के साथ कृषि क्षेत्र का खराब एकीकरण, अधिकांश किसानों को उच्च लाभ प्राप्त करने के दायरे से वंचित करता है।

सरकार किसानों के सामने आने वाली चुनौतियों को विधिवत स्वीकार करती है और इसलिए वह आजादी के शुरुआती दिनों से ही उनकी बेहतरी के लिए लगातार प्रयास कर रही है। उदाहरण के लिए, भारत के स्वतंत्र होते ही सरकार ने भूमि सुधार करने की चुनौती स्वीकार कर ली। 60 और 70 के दशक में हरित क्रांति लाई गई जिससे उत्पादकता, उत्पादन और किसानों की आय में काफी वृद्धि हुई। इसके अलावा, सार्वजनिक खरीद प्रणाली के माध्यम से और बुवाई के मौसम से पहले एमएसपी की घोषणा करके, सरकार किसानों के लिए मूल्य वसूली सुनिश्चित करने के लिए प्रयास कर रही है। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा कई सिंचाई परियोजनाएँ शुरू की गई हैं, जिनसे देश भर में लाखों किसान लाभान्वित हुए हैं।

हाल के दिनों में, सरकार ने अपनी प्रमुख महत्वाकांक्षाओं में से एक के रूप में किसानों की आय को दोगुना करने को प्राथमिकता दी है। इस संबंध में उसने किसानों की आय दोगुनी करने के संबंध में सिफारिश देने के लिए दलवई समिति का गठन किया था और उसकी सिफारिशों को नीतियों में शामिल करने के लिए कदम उठा रही है। प्रमुख योजनाओं और पहलों में पीएम किसान योजना, पीएम फसल बीमा योजना, पीएम कृषि सिंचाई योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, परम्परागत कृषि विकास योजना, FPO की स्थापना, कृषि निर्यात नीति, PM कृषि संपदा योजना आदि उल्लेखनीय हैं।

अब तक, सरकार की उपर्युक्त पहलें सकारात्मक परिणाम लाने में भी सहायक रही हैं। उदाहरण के लिए, 2012-13 में प्रति कृषि परिवार की औसत मासिक आय 6426 रुपये थी जबकि 2018-19 में यह 10218 रुपये थी। फिर भी अभी एक लंबा रास्ता तय करना है।

इस संबंध में कुछ सुझावों का पालन किया जा सकता है। सबसे पहले प्राथमिकता के आधार पर जमीन की चकबंदी कराई जाए। दूसरे, सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का किसानों के बीच प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए जिससे दलवई पैनल के अनुसार किसानों की आय में 25-30% की वृद्धि हो सकती है। तीसरा, बाजार एकीकरण के बड़े उद्देश्य के साथ कृषि बाजारों में समग्र रूप से सुधार किया जाना चाहिए। चौथा, लॉजिस्टिक्स और स्टोरेज इंफ्रास्ट्रक्चर को बढ़ाया जाना चाहिए। और अंत में, सरकार को किसानों को कौशल प्रदान करने का लक्ष्य रखना चाहिए ताकि अतिरिक्त कृषि कार्यबल को अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों द्वारा अवशोषित किया जा सके। यदि सही भावना से इन पहलों का पालन किया जाता है तो यह किसानों की भलाई में बहुत आगे तक जा सकती है।

इस प्रकार, निष्कर्ष में, हम कह सकते हैं कि किसान भारत की आत्मा हैं। भारत को पांच ट्रिलियन अर्थव्यवस्था या आत्मानिर्भर बनाने जैसे सपने तब तक साकार नहीं हो सकते जब तक कि भारत के किसानों को इसका सक्रिय हिस्सा नहीं बनाया जाएगा। अंत में यही कहना उचित होगा कि किसानों ने हमें बहुत कुछ दिया है। अब समय आ गया है कि उन्हें वह जीवन वापस दिया जाए जिसके वे लंबे समय से हकदार थे।

18.पंचायती राज

पंचायती राज व्यवस्था भारत में विकेंद्रीकृत शासन का एक रूप है जो स्थानीय समुदायों को अपने स्वयं के विकास को प्रभावित करने वाले निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाता है। यह प्रणाली सहायकता के सिद्धांत पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि निर्णय न्यूनतम संभव स्तर पर लिए जाने चाहिए और सरकार के उच्च स्तर को केवल तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब आवश्यक हो। पंचायती राज प्रणाली की स्थापना के बाद से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, लेकिन यह भारत के लोकतांत्रिक और संघीय ढांचे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना हुआ है।

'पंचायत' शब्द एक स्थानीय परिषद को संदर्भित करता है जिसमें एक विशेष क्षेत्र या गांव के निर्वाचित प्रतिनिधि शामिल होते हैं। पंचायती राज प्रणाली, इसलिए ग्राम पंचायतों (ग्राम स्तर), पंचायत समितियों (ब्लॉक स्तर) से मिलकर स्थानीय शासन की त्रि-स्तरीय प्रणाली की स्थापना को संदर्भित करती है, और प्रशासन के उच्च स्तरों के साथ समन्वय में काम करने की उम्मीद है।

बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के बाद 1959 में भारत में पहली बार पंचायती राज व्यवस्था की शुरुआत की गई थी। समिति ने ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तरों पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली की स्थापना की सिफारिश की। इस प्रणाली को लागू करने वाला पहला राज्य राजस्थान था, इसके बाद के वर्षों में अन्य राज्य आए।
पिछले कुछ वर्षों में, पंचायती राज प्रणाली में कई बदलाव और संशोधन हुए हैं, जिनका उद्देश्य इसके कामकाज और प्रभावशीलता में सुधार करना है। 1992 में संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों ने पंचायत चुनावों में महिलाओं और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण के प्रावधान और धन और चुनावों के हस्तांतरण और स्थानीय निकायों को धन और कार्यों के हस्तांतरण सहित कई महत्वपूर्ण बदलाव पेश किए।

पंचायती राज प्रणाली के प्राथमिक लाभों में से एक निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की अधिक से अधिक भागीदारी को बढ़ावा देना है। शासन को लोगों के करीब लाकर, व्यवस्था ने लोगों के लिए अपनी चिंताओं और विचारों को आवाज देना और अपने चुने हुए प्रतिनिधियों को जवाबदेह ठहराना आसान बना दिया है। इस प्रणाली ने लोगों को स्थानीय विकास कार्यक्रमों और परियोजनाओं की योजना और कार्यान्वयन में भाग लेने और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सुनिश्चित करने के लिए एक मंच भी प्रदान किया है।

पंचायती राज व्यवस्था का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देना है। महिलाओं और वंचित समूहों के आरक्षण के प्रावधान के माध्यम से, प्रणाली ने यह सुनिश्चित किया है कि पारंपरिक रूप से हाशिए पर पड़े वर्गों को स्थानीय शासन संरचनाओं में प्रतिनिधित्व दिया जाता है और उनके हितों को ध्यान में रखा जाता है। इस प्रणाली ने संसाधनों और अवसरों के समान वितरण के लिए एक ढांचा प्रदान करके ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की खाई को पाटने में भी मदद की है।

इन लाभों के बावजूद, पंचायती राज व्यवस्था को इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। प्राथमिक चुनौतियों में से एक स्थानीय निकायों के लिए पर्याप्त संसाधनों और धन की कमी रही है, जिसने विकास कार्यक्रमों और पहलों को करने की उनकी क्षमता को सीमित कर दिया है।
कई स्थानीय निकायों में भी अपने कार्यों को प्रभावी ढंग से करने के लिए आवश्यक तकनीकी और प्रशासनिक कौशल की कमी है, जिसने उनकी प्रभावशीलता को और बाधित किया है।

एक अन्य चुनौती राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रणाली के प्रति प्रतिबद्धता की कमी रही है, विशेष रूप से प्रशासन के उच्च स्तरों पर। इसने पंचायती राज संस्थाओं को निहित स्वार्थों द्वारा नष्ट कर दिया है और निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्थानीय निकायों को हाशिए पर धकेल दिया है। स्थानीय स्तर पर भ्रष्टाचार और कुप्रबंधन के उदाहरण भी सामने आए हैं, जिससे व्यवस्था में जनता का भरोसा उठ गया है।

इन चुनौतियों के बावजूद, पंचायती राज व्यवस्था ने भारत के लोकतांत्रिक और संघीय ताने-बाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की अधिक भागीदारी के लिए एक मंच प्रदान किया है और सामाजिक न्याय और इक्विटी को बढ़ावा दिया है। इसने संसाधनों और अवसरों के समान वितरण के लिए एक ढांचा प्रदान करके स्थानीय समुदायों के विकास में योगदान दिया है।

पंचायती राज व्यवस्था के सामने आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार द्वारा कई कदम उठाए गए हैं। इनमें स्थानीय निकायों के लिए अधिक धन और संसाधनों का प्रावधान और उनके तकनीकी और प्रशासनिक कौशल को बढ़ाने के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम शुरू करना शामिल है। सरकार ने स्थानीय निकायों की जवाबदेही और पारदर्शिता को मजबूत

करने और निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने के उपाय भी शुरू किए हैं। हाल के वर्षों में, कई राज्यों ने भी पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत करने के लिए अभिनव उपाय किए हैं। उदाहरण के लिए, केरल ने लोगों की योजना अभियान शुरू किया है, जिसका उद्देश्य विकास कार्यक्रमों की योजना और कार्यान्वयन में स्थानीय समुदायों को शामिल करना है। अभियान स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने और यह सुनिश्चित करने में सफल रहा है कि उनकी जरूरतों और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखा जाए।

इसी प्रकार, राजस्थान ने एक सहभागी बजट प्रणाली की शुरुआत की है, जो स्थानीय समुदायों को प्राथमिकता देने और स्थानीय विकास कार्यक्रमों के लिए धन आवंटित करने में सक्षम बनाती है। प्रणाली स्थानीय शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाने में सफल रही है और स्थानीय समुदायों को निर्णय लेने में अधिक भूमिका निभाने में सक्षम बनाती है।

पंचायती राज व्यवस्था ने सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्थानीय समुदायों को प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में भाग लेने के लिए एक ढांचा प्रदान करके, प्रणाली ने पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता के संरक्षण और संरक्षण में योगदान दिया है। स्थानीय निकाय भी नवीकरणीय ऊर्जा और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में शामिल रहे हैं जिन्होंने जलवायु परिवर्तन के शमन और सतत विकास को बढ़ावा देने में योगदान दिया है।

अंत में, पंचायती राज व्यवस्था भारत के लोकतांत्रिक और संघीय ढांचे का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसने निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की अधिक भागीदारी के लिए एक मंच प्रदान किया है, और सामाजिक न्याय और इक्विटी को बढ़ावा दिया है। कई चुनौतियों का सामना करने के बावजूद, प्रणाली ने स्थानीय समुदायों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पंचायती राज प्रणाली की निरंतर प्रभावशीलता और प्रासंगिकता सुनिश्चित करने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि सरकार स्थानीय निकायों के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए कदम उठाए। इसमें पर्याप्त धन और संसाधनों का प्रावधान, क्षमता निर्माण कार्यक्रमों की शुरुआत और जवाबदेही और पारदर्शिता को मजबूत करने के उपाय शामिल हैं। आम जनता के बीच पंचायती राज प्रणाली के बारे में अधिक जागरूकता और समझ को बढ़ावा देना और निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की अधिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना भी महत्वपूर्ण है। ऐसा करके हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि पंचायती राज व्यवस्था भारत के विकास और प्रगति में एक सार्थक भूमिका निभाती रहे।

19.विधि-नियम

कानून का शासन किसी भी लोकतांत्रिक समाज का एक अनिवार्य घटक है, और भारत कोई अपवाद नहीं है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में भारत के पास एक मजबूत कानूनी ढांचा है जो व्यक्तियों, सरकारी अधिकारियों और संगठनों के कार्यों को नियंत्रित करता है। भारत में कानून का शासन यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि देश एक स्वतंत्र, लोकतांत्रिक समाज बना रहे और सभी नागरिकों को समान रूप से न्याय मिले।

भारत में कानून का शासन संविधान पर आधारित है जो देश का सर्वोच्च कानून है। संविधान देश के शासन के ढांचे की रूपरेखा तैयार करता है और सरकार की शक्तियों और नागरिकों के अधिकारों को परिभाषित करता है। भारत का संविधान लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को भी निर्धारित करता है, जो कानून के शासन को सुनिश्चित करता है।

भारतीय कानूनी प्रणाली को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है: सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और निचली अदालतें। सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है और उसके पास संविधान की व्याख्या करने, निचली अदालतों के फैसलों की समीक्षा करने और उच्च न्यायालयों से अपील सुनने की शक्ति है। उच्च न्यायालयों का राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों पर अधिकार क्षेत्र है और निचली अदालतों और सर्वोच्च न्यायालय के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है। निचली अदालतें प्रथम दृष्टया की अदालतें हैं और देश में अधिकांश मामलों को संभालती हैं।

भारत में न्यायपालिका स्वतंत्र और निष्पक्ष है और यह कानून के शासन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश और सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की सलाह पर की जाती है। न्यायाधीशों का चयन कानून के उनके ज्ञान, उनकी सत्यनिष्ठा और उनकी निष्पक्षता के आधार पर किया जाता है।

भारत में न्यायपालिका ने कानून के शासन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में न्यायपालिका के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा में इसकी भूमिका रही है। भारत का संविधान कई मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, जैसे जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानून के समक्ष समानता, आदि। न्यायपालिका ने इन मौलिक अधिकारों की व्याख्या और उन्हें लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत में न्यायपालिका भी यह सुनिश्चित करने में सहायक रही है कि सरकार कानून के शासन का पालन करती है। न्यायपालिका

के पास न्यायिक समीक्षा की शक्ति है, जो सरकार की कार्यकारी और विधायी शाखाओं के निर्णयों की समीक्षा करने की अनुमति देती है। न्यायपालिका किसी भी कानून या सरकारी कार्रवाई को असंवैधानिक घोषित कर सकती है यदि वह संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन करती है। न्यायिक समीक्षा की यह शक्ति सुनिश्चित करती है कि सरकार लोगों के प्रति जवाबदेह है और इसकी कार्रवाई कानून के शासन के सिद्धांतों के अनुरूप है।

हालांकि, मजबूत कानूनी ढांचे और एक स्वतंत्र न्यायपालिका के बावजूद, भारत में कानून के शासन के लिए अभी भी कुछ चुनौतियां हैं। महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक न्याय की धीमी गति है। भारतीय कानूनी प्रणाली अपनी देरी के लिए कुख्यात है और मामलों को हल करने में सालों या यहां तक कि दशकों लग सकते हैं। न्याय की यह धीमी गति कानून के शासन के लिए महत्वपूर्ण बाधा हो सकती है, क्योंकि यह कानूनी व्यवस्था में लोगों के विश्वास को कम करती है।

भारत में कानून के शासन के लिए एक और चुनौती भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार कानून के शासन के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा है। भ्रष्टाचार कानूनी व्यवस्था में हेरफेर का कारण बन सकता है, अमीर और शक्तिशाली न्याय से बचने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करने में सक्षम होते हैं। यह कानून के समक्ष समानता के सिद्धांतों और न्यायपालिका की निष्पक्षता को कमजोर करता है।

अंत में, कानून का शासन किसी भी लोकतांत्रिक समाज का एक अनिवार्य घटक है और भारत के पास एक मजबूत कानूनी ढांचा है जो कानून के शासन को कायम रखता है। भारत में न्यायपालिका कानून के शासन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह सुनिश्चित करती है कि सरकार लोगों के प्रति जवाबदेह है और सभी नागरिकों के लिए समान रूप से न्याय किया जाता है। हालाँकि, भारत में कानून के शासन के लिए अभी भी कुछ चुनौतियाँ हैं, जैसे न्याय की धीमी गति और भ्रष्टाचार।

20.डिजिटल शिक्षा: सीखने का भविष्य

12वीं कक्षा में स्कूल की टॉपर परागी महामारी के कारण लगे लॉकडाउन और प्रतिबंधों के कारण विदेश में पढ़ाई करने के अपने मौके को लेकर परेशान थी। लेकिन उसने न केवल आवेदन किया बल्कि ऑनलाइन शिक्षा के कारण एक प्रतिष्ठित कॉलेज में अपनी उच्च शिक्षा सफलतापूर्वक हासिल की। अपने परिवार की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण केवल 10वीं कक्षा तक पढ़े संजय ने अब दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। इसी तरह, ओडिशा में एक नींद से भरे गांव के सैकड़ों आदिवासी छात्रों ने कक्षा 12 की बोर्ड परीक्षा अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण की, जिसका श्रेय एनजीओ की मदद से डिजिटल कक्षाओं को जाता है। डिजिटल शिक्षा वास्तव में दोनों दुनिया के सर्वश्रेष्ठ: ज्ञान और प्रौद्योगिकी को मिलाकर सीखने का भविष्य रही है। डिजिटल शिक्षा का तात्पर्य इंटरनेट और डिजिटल सहायता प्राप्त प्रणालियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना है। पाठ्यक्रमों को लाइव ऑनलाइन तरीके से आगे बढ़ाया जा सकता है और यहां तक कि स्व-पुस्तक सीखने के लिए रिकॉर्ड किए गए व्याख्यानों का लचीलापन भी प्रदान करता है।

सीखने के क्षेत्र में यह क्रांतिकारी मोड़ एक विशेष स्थान पर पहुंचने की मानव क्षमता पर काबू पाने के विभिन्न लाभ प्रदान करता है। यह न केवल छात्रों को अपना करियर बनाने की पेशकश करता है बल्कि मध्यावधि प्रशिक्षण, कार्यशालाओं के साथ पेशेवरों की सहायता भी करता है और उन्हें अतिरिक्त योग्यता जोड़ने के अपने सपने को पूरा करने में मदद करता है।

इंटरनेट ने हमारे खरीदारी करने, खरीदने, बेचने, अपना मनोरंजन करने और साथी प्राणियों के साथ बातचीत करने के तरीके में क्रांति ला दी है। यह एक क्लिक दूर की तकनीक अब शिक्षा को और अधिक सुलभ बनाने की क्षमता में सहायता करती है। डिजिटल शिक्षा को वास्तव में शिक्षा को अधिक समावेशी बनाने और इस प्रकार सतत विकास लक्ष्यों की पूर्ति के पूरक के रूप में देखा जा सकता है। इससे हमें राष्ट्र के शिक्षा के अधिकार (अनुच्छेद 2A) के सपने को पूरा करने में भी मदद मिल सकती है।

पहले के समय में, विशेष रूप से भारत में शिक्षा को कुछ लोगों का विशेषाधिकार माना जाता था। केवल ब्राह्मणों और क्षत्रियों को प्रवेश की अनुमति थी। यह गंभीर सामाजिक असमानताओं में प्रकट हुआ जो हम आज भी अनुभव करते हैं। डिजिटल लर्निंग से सबसे कमजोर वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमजोर पृष्ठभूमि की लड़कियां, ट्रांसजेंडर, बुजुर्ग, प्रवासी श्रमिक बच्चे, शहरी मलिन बस्तियों और ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को सीखने का अवसर मिल सकता है। इससे न केवल उनकी सामाजिक गतिशीलता और बेहतर नौकरी की संभावनाओं में सुधार होगा बल्कि भारत को और अधिक साक्षर भी बनाया जा सकेगा। पिछले कुछ वर्षों में NCRB के आंकड़ों ने भारत में छात्रों की बढ़ती आत्महत्याओं के मुद्दे पर प्रकाश डाला है। कारण विविध हैं: माता-पिता द्वारा अपने बच्चों पर दबाव डालना, स्व-गति सीखने की कमी, कम अंक, अच्छे कॉलेज में प्रवेश हासिल करने में कमी आदि। कृत्रिम बुद्धि के पूरक के साथ डिजिटल शिक्षा छात्रों को स्व-पुस्तक सीखने में मदद कर सकती है। छात्रों को इस बात से अवगत कराने के लिए कि वे कहाँ खड़े हैं, गुणवत्ता असाइनमेंट और निरंतर व्यापक परीक्षण आयोजित किए जा सकते हैं। इसके अलावा, ये एप्लिकेशन ताकत और सुधार के क्षेत्रों के बारे में एक विचार प्रदान करते हैं जिसका उपयोग छात्रों द्वारा स्मार्ट तरीके से तैयार करने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा, छात्रों को इमर्सिव तकनीकों के उपयोग के माध्यम से व्याख्या का संवर्धन प्रदान किया जा सकता है। ध्वनि द्वारा सहायता प्राप्त कार्य करने की विधि के वीडियो बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता को बेहतर बनाए

रखने में सुधार करते हैं। डिजिटल शिक्षा स्कूलों और संस्थानों के साथ क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सार्थक सहयोग का अवसर भी प्रदान करती है। हम सभी शिक्षा प्रणाली के सभी स्तरों पर योग्य शिक्षकों की कमी से अवगत हैं। डिजिटल रूप से कक्षाओं को जोड़ने से सुयोग्य शिक्षक के ज्ञान और पद्धति को सैकड़ों छात्रों तक पहुंचने में मदद मिलेगी।

इसके अलावा, प्रमुख प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और प्रबंधन संस्थान उन छात्रों तक पहुंच सकते हैं जो आर्थिक रूप से कैंपस में रहने या शुल्क का भुगतान करने में सक्षम नहीं हैं।
भारतीय विश्वविद्यालयों की गुणवत्ता रैंकिंग में सुधार करने का सरकार का दृष्टिकोण ताकि वे दुनिया के शीर्ष 50 और 100 संस्थानों में स्थान प्राप्त कर सकें, अपने संस्थानों (शीर्ष 100 वैश्विक विश्वविद्यालयों) से सर्वोत्तम प्रथाओं को सीखकर पूरा किया जा सकता है।

भारत निश्चित रूप से एक कदम आगे बढ़ सकता है और प्रसिद्ध भारतीय संस्थानों से डिजिटल रूप से शिक्षा प्राप्त करने के लिए पड़ोसी देशों, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के गरीब देशों के छात्रों को आमंत्रित कर सकता है। यह निश्चित रूप से एक बड़ा प्रभाव डालेगा और भारत के सॉफ्ट पावर प्रभाव को फिर से स्थापित करेगा।

इसके अलावा, भारत विश्व स्तर पर अपनी छवि को मजबूत कर सकता है और ज्ञान अर्थव्यवस्था के अपने विचार को आकार दे सकता है। हालाँकि, दूसरी तरफ देखने पर, डिजिटल शिक्षा की अवधारणा पर चलना एक कसौटी है। हालांकि यह विचार आशाजनक और क्रांतिकारी है, लेकिन इसमें सबसे बुनियादी चुनौतियां बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना है। बिजली, इंटरनेट और गैजेट्स मौजूद होने पर ही डिजिटल शिक्षा प्रभावी हो सकती है। एनएफएचएस 2014-15 सर्वेक्षण ने निराशाजनक तस्वीर को उजागर किया है जहां 20% से कम ग्रामीण परिवारों के पास एक उपकरण विशेष रूप से कंप्यूटर है, जबकि शहरी क्षेत्रों में घरों का अनुपात 75%+ है। ASER 2020 की रिपोर्ट बताती है कि भारत में केवल 33% छात्रों की डिजिटल शिक्षा तक पहुंच हो सकती है; जिनमें से 11% ही लाइव क्लासेस अटेंड कर सके। ग्रामीण विद्युतीकरण अभी भी एक सपना है, स्थिर इंटरनेट कनेक्शन के बारे में तो भूल ही जाइए। इसके अलावा, हमने केवल लैंगिक असमानता के कोण को देखा है जिससे महिलाओं की तुलना में पुरुषों के पास स्मार्टफोन का अनुपात अधिक है। साथ ही, एक परिवार के पास एक ही फोन है तो लड़के को वरीयता दी जाती है।

एक और गंभीर चिंता जिसे डॉक्टरों और बाल मनोवैज्ञानिकों ने उजागर किया है, वह है लत का मुद्दा। छात्रों को विकिरण, आंखों पर तनाव और लगभग नगण्य शारीरिक गतिविधि के संपर्क में आने वाले गैजेट के सामने घंटों बिताना चाहिए। स्क्रीन दिया जाना एक नया सामान्य हो गया है और आजकल के युवा सिर्फ प्रयास करने से इनकार करते हैं। इससे छात्रों में मानसिक तनाव और मोटापा बढ़ने की संभावना रहती है। डिजिटल शिक्षण भी इसके अनुप्रयोग में सीमित है, अभी भी कोई तरीका नहीं है कि छात्र रसायन विज्ञान, फैशन प्रौद्योगिकी, सौंदर्य और कल्याण, आतिथ्य आदि जैसे व्यावहारिक विषयों को कैसे सीखेंगे क्योंकि इसके लिए सीखने और अभ्यास की आवश्यकता होती है। सीखने के परिणाम पर भी सवाल उठाया जा सकता है क्योंकि एक स्क्रीन द्वारा अलग किए जाने से छात्र अक्सर उदासीन हो जाते हैं और परीक्षा में नकल/धोखा देने के अवसर खुल जाते हैं। डिजिटल शिक्षा न केवल छात्रों को बल्कि शिक्षकों को भी कई तरह से प्रभावित करती है। सबसे पहले, शिक्षकों को स्वयं ऑनलाइन शिक्षण और व्याख्यान आवेदन का उपयोग करने के बारे में सीखना था। उनमें से कुछ को वस्तुतः ढांचे में धकेल दिया गया और उन्हें कोई पूर्व प्रशिक्षण नहीं दिया गया। यह न केवल शिक्षण को प्रभावित करता है बल्कि शिक्षकों के आत्मविश्वास को भी कम करता है।

इसके अलावा, कई शिक्षक उन बच्चों के माता-पिता से प्राप्त होते हैं जो उनके साथ कक्षाओं में भाग लेते हैं और कई तरह से शिक्षाशास्त्र में बाधा डालते हैं। शिक्षकों को माता-पिता के प्रभाव के कारण व्याख्यान देने से रोक दिया जाता है जहां वे थोड़ी सी भी त्रुटि के लिए उन्हें ठीक कर देते हैं। इसके अलावा, स्कूल के साथ घर को मैनेज करना कई लोगों के लिए एक चुनौतीपूर्ण काम रहा है। हमारे शिक्षक ज्यादातर महिलाएं ऑनलाइन व्याख्यान के साथ-साथ घरेलू कर्तव्यों से भी दोगुना बोझ हैं। छात्र अक्सर शरारतें करते हैं, तकनीक के साथ शिक्षकों की मदद करने के बजाय कक्षाओं को बाधित करते हैं। भले ही, डिजिटल शिक्षा कई चुनौतियों का सामना करती है, लेकिन उन्हें सामाजिक और राजनीतिक इच्छाशक्ति के माध्यम से प्रभावी ढंग से निपटाया जा सकता है। सरकार को शिक्षा पर अपने खर्च को मौजूदा 4% से बढ़ाकर 6% करने और हितधारकों को आवश्यक बुनियादी ढांचा और प्रशिक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, सीएसआर फंडिंग का उपयोग छात्रों को इंटरनेट कनेक्शन के साथ आवश्यक उपकरण प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। भारतनेट परियोजना को युद्धस्तर पर पूरा करने की आवश्यकता है ताकि गांवों को प्रभावी ढंग से कवर किया जा सके।

इसके अलावा, आर्थिक रूप से संपन्न शैक्षणिक संस्थानों को अन्य कम संपन्न स्कूलों और कॉलेजों के साथ सहयोग करने के लिए स्वेच्छा से आगे आना चाहिए। इससे हमें उन क्षेत्रों में समस्या को रोकने में मदद मिलेगी जहां शिक्षकों की उपलब्धता के कारण स्कूलों को बंद करना पड़ता है।

इसके अलावा, जैसा कि आइंस्टीन ने इस बात पर जोर दिया था कि शिक्षा को बच्चों को यह सिखाना चाहिए कि कैसे सोचना चाहिए, न कि क्या सोचना चाहिए, इसे अपनाया जाना चाहिए। शिक्षा में दुनिया को बदलने की ताकत है और इसलिए पाठ्यक्रम

और निष्पादन सुनियोजित होना चाहिए। सीखने के एक मिश्रित रूप को अपनाया जा सकता है क्योंकि कक्षा में समृद्ध और आजीवन पाठों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

सामाजिक संपर्क छात्रों को एक टीमवर्क, सहिष्णुता, असहमत होने की क्षमता लेकिन सम्मानपूर्ण होना, विविधता को गले लगाना, लैंगिक संवेदनशीलता और समानता सिखाते हैं। सामाजिक संपर्क हमारे दिमाग को खोलता है और कई तरह से तनाव दूर करता है। इसके अलावा, कक्षा की सेटिंग में शिक्षक और शिष्य के बीच का बंधन मजबूत होता है। जैसा कि अरस्तू ने कहा, "हृदय की शिक्षा के बिना मन की शिक्षा कोई शिक्षा नहीं है"।

डिजिटल शिक्षा हालांकि विघटनकारी है लेकिन कई अवसर प्रदान करती है। यह एक राष्ट्र पर निर्भर करता है कि वह इसे विभेदक के लिए एक स्तर का बना दे। एक अधिक समावेशी और शिक्षित समाज हमें प्रस्तावना में निहित हमारे सामाजिक और आर्थिक न्याय के लक्ष्यों को पूरा करने में मदद करेगा। शिक्षित आबादी एक प्रमुख मानव संसाधन है जिसका प्रभावी ढंग से आत्मनिर्भर भारत और एक सच्चे लोकतंत्र बनने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

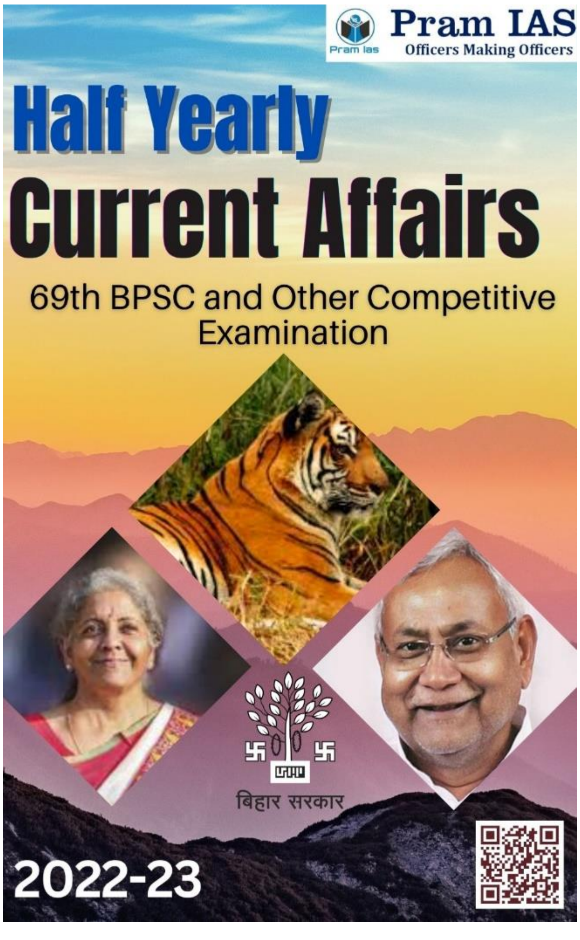

21.होने से बनने तक

महात्मा गांधी अपने मुवक्किल दादा अब्दुल्ला का मुकदमा लड़ने के लिए एक वकील के रूप में दक्षिण अफ्रीका गए। यह यात्रा एक वकील की उनकी पेशेवर क्षमता में थी। लेकिन रास्ते में, उन्हें अपनी यात्रा के दौरान ट्रेन में नस्लीय भेदभाव का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। बाद में, उन्हें दक्षिण-अफ्रीका में भारतीयों की दुर्दशा से द्रवित कर दिया गया। उन्होंने भारतीयों के अधिकारों को हासिल करने के लिए औपनिवेशिक सत्ता से लड़ने का फैसला किया।

प्रारंभ में, उन्होंने संवैधानिक तरीकों का सहारा लिया। लेकिन जनता की शक्ति को महसूस करते हुए, उन्होंने सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आदि तकनीकों का प्रयोग और विकास किया और औपनिवेशिक सत्ता को कड़ी टक्कर दी। उन्होंने ट्रांसवाल इमिग्रेशन एक्ट आदि के खिलाफ सफलतापूर्वक लड़ाई लड़ी।

इस प्रकार, महात्मा गांधी एक वकील होने से दक्षिण अफ्रीका के जननेता बन गए।
दूसरी ओर, हिटलर जर्मनी में नाजी दल का नेता था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद पेरिस शांति संधि के कारण जर्मनी द्वारा सामना किए गए अपमान से वह द्रवित हो गए थे। उन्होंने जर्मनों की राष्ट्रवादी भावनाओं को जगाया। उन्होंने जर्मनी की अनियमितताओं के लिए यहूदियों और वीमर गणराज्य को दोषी ठहराया। वह एक नेता से तानाशाह बन गया और पूरी दुनिया को विनाशकारी विश्व युद्ध 2 में फेंक दिया। इस प्रकार, हिटलर एक उत्साही राष्ट्रवादी होने के कारण, विश्व युद्ध 2 का एक वास्तुकार बन गया।

इन कहानियों से पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व है और अंत में कुछ बन जाता है। यह उनका व्यक्तित्व, इरादे, दृष्टिकोण, मूल्य, नैतिकता है जो उनके विकासवादी प्रक्षेपवक्र को आकार देते हैं। जो व्यक्ति के लिए सत्य है, वह शहर, राष्ट्र या विश्व के व्यापक संदर्भ में भी लागू होता है। यह निबंध गांव, शहर, राष्ट्र और दुनिया के स्तरों पर 'होने से बनने' के विभिन्न दृष्टिकोणों का विश्लेषण करता है। यह उन गुणों और परिस्थितियों को देखने की कोशिश करता है जो उसी के विकास को आकार देते हैं। पहला, एक व्यक्ति के सत् से कुछ बनने में परिवर्तन के लिए इसका क्या अर्थ है? कहा जाता है कि व्यक्ति प्रकृति और पोषण का उत्पाद है। हर कोई कुछ अंतर्निहित क्षमताओं के साथ पैदा होता है और समाजीकरण की प्रक्रिया आगे चलकर व्यक्ति के व्यक्तित्व को ढालती है। हर किसी के जीवन में कुछ लक्ष्य होते हैं। और इसलिए वह इसे प्राप्त करने के लिए ज्ञान प्राप्त करती है। अंतिम उद्देश्य आत्म-बोध प्राप्त करना है। इस प्रक्रिया में, व्यक्ति होने से बनने में बदल जाता है। गांधीजी और हिटलर की यात्रा से यही उजागर होता है।

इसी प्रकार, समाज, राज्य या देश भी विकसित होते हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और जो इसे अपनाने में विफल रहता है वह

पीछे छूट जाता है। बड़े पैमाने पर प्रत्येक संस्था या राष्ट्र की एक निश्चित दृष्टि होती है और इसे प्राप्त करने की प्रक्रिया में, होने से बनने में बदल जाता है। महाराष्ट्र के रालेगांव सिद्धि नाम के एक गांव के मामले पर विचार करें। यह एक सूखा प्रवण क्षेत्र था जहाँ पीने का पानी भी एक विलासिता थी। कृषि उत्पादकता अविश्वसनीय रूप से कम थी। शराबखोरी का खतरा बढ़ रहा था और युवाओं को रोजगार के लिए दूसरे शहरों में जाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

लेकिन फिर अन्ना हजारे के रूप में एक नेता आए जिन्होंने गांव की तकदीर बदल दी। रालेगांव सिद्धि गरीब गांव से समृद्ध गांव बन गया। यह श्री अन्ना हजारे के नेतृत्व में संभव हुआ। उन्होंने वाटरशेड प्रबंधन की दिशा में सामुदायिक प्रयासों का नेतृत्व किया, युवाओं को संगठित किया, सामाजिक बुराइयों से लड़ने के लिए ग्राम समितियों का गठन किया। आज, रालेगांव सिद्धि न केवल महाराष्ट्र बल्कि देश के समृद्ध गांवों में से एक है।
इसी तरह स्वच्छ सर्वेक्षण में इंदौर ने लगातार पांचवीं बार सबसे स्वच्छ शहर बनकर उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की है। पहले यह कूड़े के ढेर, आवारा मवेशी, खराब सीवेज इंफ्रास्ट्रक्चर और बीमारी से ग्रस्त शहर हुआ करता था। कूड़ेदानों का शहर बनने से लेकर सबसे स्वच्छ शहर बनने तक का सफर एक प्रेरक यात्रा है। ऐसा कैसे हो सकता है? यह एक बहुआयामी रणनीति थी।

इंदौर नगर निगम ने अधोसंरचना की व्यवस्था करके इस प्रयास का नेतृत्व किया। डोर टू डोर कचरा संग्रहण के लिए, सामुदायिक जागरूकता फैलाने के लिए एमजीओ को शामिल किया गया, कचरे के पुनर्चक्रण के लिए निजी क्षेत्र को शामिल किया गया। सबसे महत्वपूर्ण योगदानकर्ता नागरिक थे जिनकी भागीदारी इन प्रयासों को सफल बनाने के लिए आवश्यक थी। इस प्रकार, इंदौर शासन के लिए मॉडल है जहां कई अभिनेता मिशन को प्राप्त करने के लिए समन्वय और योगदान करते हैं। अब, यदि हम पैमाने को बड़ा करते हैं और भारत के बाहर देखते हैं, तो हम आसानी से अपने पड़ोस, यानी बांग्लादेश में सफलता की कहानी पा सकते हैं। 1970 के दशक में, बांग्लादेश सबसे गरीब देशों में से एक था। सबसे गरीब लोगों में से एक होने से बेहतर मानव विकास सूचकांकों के साथ तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था बनना एक उत्कृष्ट उपलब्धि का संकेत देता है।
स्वतंत्रता के बाद, बांग्लादेश ने विकास के अपने स्वदेशी मॉडल का निर्माण किया। इसने कपड़ा क्षेत्र पर जोर दिया जो श्रम प्रधान है। माइक्रोफाइनेंस का इसका ग्रामीण बैंक मॉडल भी उल्लेखनीय है। इसने नागरिकों की क्षमता निर्माण पर भी ध्यान केंद्रित किया और ये प्रयास फलीभूत हुए। इन सबके परिणामस्वरूप बांग्लादेश सबसे कम विकसित देशों में से एक से भारत जैसे विकासशील देशों का हिस्सा बन गया है। विश्व स्तर पर भी, हम अस्तित्व से बनने तक के विकास को देख सकते हैं। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक, उपनिवेशवाद एक वास्तविकता था। दुनिया ने पिछले उपनिवेशों को नियंत्रित करने के लिए महान शक्तियों के बीच विश्व युद्ध देखा। इन युद्धों ने वैश्विक अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिया, मानव जीवन और कष्टों का बड़ा नुकसान किया।

लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, स्थिर विश्व व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थापित राष्ट्र संघ अगले संकट को रोकने में विफल रहा। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संगठन नामक एक नया संगठन बनाया गया था। UNO ने विश्व शांति की दिशा में प्रयासों का बीड़ा उठाया। व्यक्तिगत देशों ने उनके प्रयासों में योगदान दिया। आज विश्व व्यवस्था संघर्षग्रस्त से नियम आधारित और शांतिपूर्ण व्यवस्था में बदल गई है। यह सब इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे एक गांव, शहर, देश और दुनिया प्रगति के पथ पर आगे बढ़ी। लेकिन फिर सवाल उठता है। क्या विकास हमेशा सकारात्मक होता है? क्या 'बनने' की अवस्था 'होने' की अवस्था से हमेशा बेहतर होती है?

आइए इस परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालने के लिए कुछ और उदाहरण लें। यदि हम मनुष्य के विकास को देखें, तो हम देखते हैं कि मनुष्य प्रकृति के साथ तालमेल बनाकर रहता था। भीमबेटका या सिन्धु घाटी सभ्यता के मध्यपाषाण काल के चित्रों में प्रकृति पूजा या प्रकृति के साथ समरसता काफी दृष्टिगोचर होती थी। लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य की प्रगति हुई, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति हुई। प्रकृति का दोहन शुरू हो गया। आज दुनिया जलवायु परिवर्तन का गवाह बन रही है। चरम मौसम की घटनाएं आवृत्ति में बढ़ रही हैं। यह सब प्राकृतिक संसाधनों के लिए मानव लालच का नतीजा है। इस प्रकार, प्रकृति प्रेम से प्रकृति शोषक बनने तक मानवता ने एक विनाशकारी रास्ता अपनाया है।

इसी तरह, औद्योगिक क्रांति मानवता के इतिहास में मील के पत्थर की घटनाओं में से एक थी। प्राकृतिक और मानव संसाधन की उपलब्धता, तर्कसंगत और तकनीकी प्रगति की खोज के कारण अपनी राजनीतिक स्थिरता के कारण ब्रिटेन औद्योगिक क्रांति का अनुभव करने वाला पहला देश था। औद्योगिक क्रांति ने लोगों के जीवन को आसान कर दिया है लेकिन ब्रिटेन औद्योगिक शक्ति होने से एक साम्राज्यवादी शक्ति बन गया। सस्ते कच्चे माल की इसकी खोज और तैयार माल के लिए बाजारों ने क्षेत्रीय विस्तार और दुनिया के उपनिवेशीकरण को प्रोत्साहित किया। वर्तमान संदर्भ में चीन के बारे में भी यही कहा जा सकता है।

सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक होने के नाते, यह एक विस्तारवादी शक्ति बन रही है जो विश्व व्यवस्था के लिए खतरा बन रही है। इसकी ऋण-जाल कूटनीति और दक्षिण चीन सागर में 9-dah लाइन पर संप्रभुता के दावे, बेल्ट एंड रोड पहल, भारत के क्षेत्रीय डोमेन में लगातार घुसपैठ, आदि इसकी बदलती प्रकृति के प्रमाण हैं।

नक्सलवाद किसानों के अधिकारों के लिए एक छोटे से आंदोलन के रूप में शुरू किया गया था लेकिन आज यह भारत के लिए

सबसे बड़ा आंतरिक सुरक्षा खतरा है। साम्प्रदायिकता, जिसके बीज औपनिवेशिक शासन के दौरान बोए गए थे, ने भारत को बहुत नुकसान पहुँचाया था। भारत धार्मिक रूप से विविध और अखंड देश होने के कारण धर्म के आधार पर विभाजित देश बन गया।

इस प्रकार, अस्तित्व से बनने तक की यात्रा प्रत्येक व्यक्ति, राष्ट्र या विश्व में बड़े पैमाने पर होती है। एक व्यक्ति को सकारात्मक पथ पर प्रगति करने के लिए एक दृष्टि होना आवश्यक है। और फिर उस दिशा में निरंतर प्रयास ही उसे सफलता प्राप्त करने में मदद कर सकता है। लेकिन जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा है, साधन शुद्ध होने चाहिए, तभी व्यक्ति नैतिक बन सकता है। होने से बनने की सफल यात्रा को प्राप्त करने के लिए नैतिक मूल्यों जैसे समानता, ईमानदारी, निष्पक्षता, सहिष्णुता, सहानुभूति आदि के मूल्यों का होना बहुत आवश्यक है। इसी तरह राष्ट्र या विश्व के लिए, यह सामुदायिक भागीदारी, राज्य का नेतृत्व, निजी क्षेत्र, मीडिया, गैर सरकारी संगठनों आदि जैसे कई अभिनेताओं के साथ सहयोग होने के कारण परिवर्तन ला सकता है। '5S' यानी सहयोग (सहयोग), शांति (शांति), सम्मान (सम्मान), संवाद (संवाद) और समृद्धि (समृद्धि) के मूल्यों पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग शांतिपूर्ण और स्थिर विश्व व्यवस्था के लिए बहुत आवश्यक है।

'होना' से 'होना' एक यात्रा है। यह वह रास्ता है जिसे हम अपनाते हैं जो विकास के पाठ्यक्रम को तय करता है। यह वही यात्रा है जो महात्मा गांधी जैसे जननेता या हिटलर जैसे तानाशाह पैदा कर सकती है। यह वही यात्रा है जो बांग्लादेश को समृद्ध बना सकती है या चीन जैसी विस्तारवादी शक्ति बना सकती है।

22. लोगों को अपने आप में साध्य के रूप में मानें, अंत के साधन के रूप में कभी नहीं।

एक बार एक ब्रिटिश अदालत में एक बहुत ही असामान्य मामला पहुंचा। मामला नरभक्षण के एक विचित्र कृत्य से संबंधित था। इस मामले के तीन आरोपियों के बारे में कहा गया था कि उन्होंने एक युवा लड़के का मांस खाया था जो उनके साथ समुद्र में नाव यात्रा कर रहा था। तीनों आदमियों ने ऐसा करने की बात स्वीकार भी की, लेकिन उनके द्वारा दिया गया तर्क यह था कि अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो वे सभी भोजन न मिलने के कारण मर जाते। इसके अलावा, उन्होंने कहा, समुद्र के खारे पानी के सेवन के कारण लड़का अस्वस्थ था और वैसे भी मर जाता। इसलिए, उन्होंने उसे मार डाला और यात्रा पर खुद को बनाए रख सके। एक लड़के की मौत ने तीन अन्य लोगों की जान बचाई।

अब ये तर्क एक बहुत ही मौलिक प्रश्न उठाते हैं, जिससे दार्शनिक युगों से जूझते रहे हैं। क्या लोगों को एक अंत के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है या क्या उन्हें अपने आप में एक अंत होना चाहिए?

ऊपर वर्णित नरभक्षण के मामले में, उपयोगितावादी तर्क देंगे कि सबसे बड़ी अच्छी या सबसे बड़ी संख्या की अधिकतमता को बचाने के लिए एक व्यक्ति को मारना पूरी तरह से न्यायसंगत है। दूसरी ओर, परिणामवादी या प्रयोजनवादी विद्वान साध्य को साधनों से ऊपर रखने का तर्क देंगे। परिणामवादियों के अनुसार, यदि अंत अच्छा है, तो साधनों से समझौता किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। इसलिए, यदि किसी को साधन के रूप में उपयोग करने से एक बड़ा उद्देश्य पूरा होता है, तो ऐसा ही हो। उदाहरण के लिए परिणामवादी कार्यों के लिए जैसे चोरी उचित है अगर यह गंभीर परिस्थितियों में किया जाता है, मान लीजिए कि भुखमरी से बचने के लिए।

तर्कों की इन दो पंक्तियों के विपरीत इमैनुएल कांट का कर्तव्यपरायण परिप्रेक्ष्य आता है। कांट साधन को सिरों से ऊपर रखता है। कांट का दृष्टिकोण मानवीय गरिमा पर जोर देता है और इसे एक स्पष्ट अनिवार्यता के रूप में समर्थन करता है।

कांट के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति को साध्य के साधन के रूप में उपयोग किया जाता है, तो उसकी गरिमा का उल्लंघन होता है, मानवीय गरिमा किसी भी परिस्थिति में अनुल्लंघनीय है।

प्राचीन युग से लेकर आज तक जीवन के हर क्षेत्र में, हमने लोगों को एक बड़े, कभी-कभी इतने महान उद्देश्यों के लिए एक साधन के रूप में इस्तेमाल होते देखा है। प्राचीन ग्रीस के समय से लेकर अमेरिकी क्रांति तक, हम दुनिया भर में बड़े पैमाने पर गुलामी की प्रथा को देखते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस जैसी साम्राज्यवादी शक्तियों ने मानव दासों के व्यापार को वैध बना दिया जैसे कि वे वस्तु हों। संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी राज्यों ने गुलामी को जारी रखने के अपने अधिकार को जारी रखने के लिए उदार उत्तर के खिलाफ गृहयुद्ध भी चलाया। सामूहिक रूप से मनुष्य को साधन के रूप में उपयोग करने वाले समाज का इससे अच्छा उदाहरण कोई नहीं हो सकता।

अफ्रीका और दक्षिण एशिया के दासों को तत्कालीन शाही साम्राज्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए दयनीय जीवन स्थितियों के तहत खेतों, उद्योगों और बागानों में एक अनुबंधित मजदूर के रूप में इस्तेमाल किया गया था। अरस्तू जैसे कुछ प्राचीन दार्शनिकों ने समाज की मूलभूत आवश्यकता के रूप में गुलामी का बचाव भी किया। उन्होंने इस आधार पर गुलामी को युक्तिसंगत बनाया कि यह प्रथा गुलामों के हित में भी थी, क्योंकि उनमें स्वतंत्र जीवन जीने के लिए मानसिक क्षमताओं का अभाव था। भले ही सही मायने में गुलामी न हो, लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान नील की खेती करने वालों, गरीब किसानों और आदिवासियों की दुर्दशा एक जैसी थी। उनके श्रम का उपयोग

औपनिवेशीकरण के अंत की ओर एक साधन के रूप में किया गया था। आधुनिक समय में, जॉन लोके, थॉमस हॉब्स आदि जैसे विद्वानों द्वारा उदारवादी विचारधारा का प्रचार किया गया।

इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को अधिकतम संभव स्वतंत्रता देना था, ताकि वे अपने रचनात्मक सर्वश्रेष्ठ को आगे बढ़ा सकें। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, मानवता फिर से धीरे-धीरे उसी तरह की स्थिति में आ गई। इस बार यह पूँजीवाद में अदृश्य दासता थी। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रांति की सफलता के लिए मजदूरों को दिल से लगाया गया। उत्पादन के पूंजीवादी तरीके की आलोचना करते हुए, जहां श्रमिकों को कुछ हाथों में धन के संचय के उद्देश्य के लिए एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, कार्ल मार्क्स ने अलगाव के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। पूंजीवादी श्रम की जड़ ने मनुष्य को पहिये के एक दलदल में बदल दिया क्योंकि वह न केवल अपने श्रम के उत्पाद से बल्कि समाज और स्वयं से भी अलग हो गया।

राष्ट्रीयता की चेतना के उदय के साथ, 1648 में वेस्टफेलिया की संधि के बाद राष्ट्र राज्यों का उदय हुआ। यद्यपि युद्धों का इतिहास स्वयं मानव जाति जितना ही पुराना है, अब युद्ध राष्ट्रीय हित के बड़े उद्देश्य के नाम पर लड़े जाते थे। दो विश्व युद्धों के दौरान अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए सैकड़ों हजारों निर्दोष नागरिकों और कर्तव्यनिष्ठ सैनिकों की मृत्यु हो गई, जो काफी हद तक उस समय के नेताओं का निर्माण था, लाखों लोगों ने अपने देश की रक्षा की वेदी पर बलिदान दिया था . यह राजनेताओं के बढ़े हुए अहंकार का परिणाम भी हो सकता है जिसके कारण उन्होंने अपने देशवासियों को राष्ट्रीय हित के बहाने एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया।

राजनेता और राजनीति लोगों को केवल युद्ध के साधन के रूप में ही नहीं, बल्कि नियमित राजनीति के दौरान भी मानते हैं। चुनाव से ठीक पहले वोट लेने के लिए राजनेताओं द्वारा लोगों से संपर्क किया जाता है और मतदाता के रूप में उनकी उपयोगिता समाप्त होने के बाद उन्हें पूरी तरह से भुला दिया जाता है। धन के अतृप्त लोभ और सत्ता की लालसा के कारण राजनीति में अपराधीकरण, भ्रष्टाचार का मिश्रण हो गया है जिसके लिए कोई भी साधन अनैतिक नहीं माना जाता है।

गांधीजी ने कहा था कि नैतिकता के बिना राजनीति मौत का जाल है। उन्होंने साध्यों पर प्राथमिकता की वकालत की, जो समकालीन राजनीति के लिए मार्गदर्शक प्रकाश का स्रोत हो सकता है, न कि केवल सत्ता हथियाने के साधन के रूप में मतदाताओं को कम करने के लिए। उनका पालन-पोषण करना है, धन और बाहुबल का सहारा लेने के बजाय कठिन प्रयासों से सद्भावना अर्जित करनी है।

जैसा कि वे कहते हैं कि राजनीति समाज की एक दर्पण छवि है, जिसमें यह स्थित है। समाज में, हम विभिन्न उदाहरणों को देखते हैं जब लोगों को साध्य के साधन के रूप में माना जाता है। लोग चोरी, छल, झूठ, अर्धसत्य, घोटालों आदि में लिप्त रहते हैं जहाँ किसी को किसी और के कारण को आगे बढ़ाने के साधन के रूप में उपयोग किया जा रहा है। ऐसी सभी गतिविधियां न केवल अनियंत्रित हैं बल्कि सामान्य भी हो गई हैं। हमारे समाज में उनके लिए कोई तीव्र घृणा की भावना नहीं है। हन्ना अरेंड्ट के अनुसार, बुराई सामान्य हो गई है।

आर्थिक क्षेत्र भी समाज का एक महत्वपूर्ण घटक है। हमने देखा है कि निजी डेटा का इस्तेमाल कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिए धोखे से किया जा रहा है। इसने गोपनीयता और डेटा चोरी की व्यापक चिंताओं को जन्म दिया है। इसे एक कंपनी के रूप में भी देखा जा सकता है जो अपने ग्राहकों और उनकी व्यक्तिगत जानकारी का उपयोग उनकी व्यावसायिक संभावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए एक नाजायज साधन के रूप में करती है। यह निजता के अधिकार का उल्लंघन करता है जो अब संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार है।

कोविड-19 महामारी के दौरान, हमने दुनिया भर में कंपनियों द्वारा सैकड़ों टीकों का निर्माण होते देखा है। संकट की गंभीरता को देखते हुए क्लीनिकल ट्रायल जल्दबाजी में किए गए। हमने देखा कि कमजोर और गरीब लोगों को गलत जानकारी देकर और कभी-कभी उन्हें बड़ी रकम की पेशकश करके इन परीक्षणों के एजेंट के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। यहां सवाल उठता है कि क्या गरीबों की वित्तीय स्थिति का इस्तेमाल उन्हें जानलेवा मुकदमे की ओर धकेलने के लिए किया जा रहा है, भले ही यह एक बड़े उद्देश्य को पूरा करने का इरादा रखता हो। भले ही वह आर्थिक रूप से गरीब हो, लेकिन उसकी गरिमा का हर कीमत पर सम्मान किया जाना चाहिए। इस प्रकार, कभी-कभी यह एक बड़े अच्छे को आगे बढ़ाने के लिए बन जाता है, हालांकि यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संबंधित व्यक्ति के लिए अत्यंत देखभाल और सहानुभूति समाज का कर्तव्य होना चाहिए जिसके लाभ के लिए उसे एक साधन के रूप में उपयोग किया जा रहा है। हालांकि, कांट का दृष्टिकोण किसी भी मानवीय आत्मा के लिए सबसे अधिक आकर्षक है, लेकिन व्यक्ति को ऐसी व्यक्तिपरक धारणाओं और निष्कर्षों में निरपेक्ष नहीं होना चाहिए क्योंकि स्थिति भिन्न हो सकती है और किसी विशेष संदर्भ में उपयुक्त विभिन्न दृष्टिकोणों की मांग कर सकती है।

23.सत्ता का विकेंद्रीकरण और पंचायतों का महत्व

लोकतंत्र का सार शक्ति का विकेंद्रीकरण है और लोगों के कल्याण के लिए शासन को जमीनी स्तर तक पहुंचने देना है। लोगों द्वारा चुनी गई स्थानीय सरकार इस प्रकार क्षेत्र के निवासियों को शामिल करते हुए समाज के लोकतांत्रिक कामकाज को आत्मसात करती है। स्थानीय सरकार की अवधारणा भारत में ग्राम स्तर पर सभाओं और समितियों सहित विभिन्न रूपों में सभ्यता की शुरुआत से ही रही है। यह वर्ष 1882 में था जब लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन पर एक प्रस्ताव जारी किया था। स्थानीय निकायों की शक्तियों के किसी भी विस्तार और उन्हें लोकतांत्रिक स्वरूप देने के खिलाफ उन दिनों की नौकरशाही द्वारा आपत्तियां उठाई गई थीं। यह एक व्यापक संकल्प था जो प्रशासनिक क्षेत्रों, स्थानीय निकायों के गठन, उनके कार्यों, वित्त और शक्तियों से संबंधित था। इसने भारतीय संविधान के भाग 4 में शामिल होने के लिए समय-समय पर स्थानीय संस्था को मजबूत किया। संविधान का अनुच्छेद 40 ग्राम पंचायतों के संगठन का प्रावधान करता है और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने की शक्ति भी प्रदान करता है। लेकिन राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का हिस्सा होने के कारण अनुच्छेद 40 को न्यायिक रूप से लागू नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने जमीनी स्तर पर समुचित कार्य और शक्ति के हस्तांतरण के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया।

सरकार ने बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया, जिसमें भारत में पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना स्थापित करने का प्रस्ताव था, जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतें, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद हों। यह भी माना गया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती, निश्चितता और निरंतरता प्रदान करने के लिए संविधान में कुछ बुनियादी और आवश्यक विशेषताओं को शामिल करने की अनिवार्य आवश्यकता है। इस प्रकार, तदनुसार संविधान 73वाँ संशोधन अधिनियम 1992 और 74वाँ संशोधन अधिनियम 1992 सरकार द्वारा अधिनियमित किया गया।

संशोधन के बाद संविधान में भाग 9 और 9A जोड़े गए। यह ग्राम, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायत के गठन का प्रावधान करता है; ग्राम स्तर पर ग्राम सभा जिसमें गाँव की मतदाता सूची में पंजीकृत व्यक्ति शामिल हों; अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण; पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और पंचायतों को निधियों के हस्तांतरण के लिए उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए वित्त आयोग का गठन; राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा पंचायतों का चुनाव कराया जाना है।

भाग 9A नगर पालिकाओं के गठन और संरचना का प्रावधान करता है; वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा और करों का आवंटन करेगा; नगर पालिकाओं के लिए चुनाव; जिला योजना समिति और महानगर योजना समिति। उपरोक्त के आधार पर, पंचायती राज संस्थाएँ लंबे समय से अस्तित्व में हैं, जमीनी स्तर पर लोगों की भागीदारी एक नौकरशाही और यांत्रिक कवायद बन गई है। अतीत में ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जहां खनन सहित विभिन्न व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए भूमि के अधिग्रहण के लिए ग्राम सभा की मंजूरी को मजबूर या जाली बनाया गया है।

यहां तक कि स्थानीय नौकरशाही ने भी संस्था को जमीनी स्तर पर विकसित करने और बनाए रखने में ज्यादा मदद नहीं की है। केवल पंचायतों को संविधान का हिस्सा बनाने से जमीनी लोकतंत्र का मामला तब तक हल नहीं होगा जब तक कि इसके अंगों को सशक्त नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, स्थानीय स्वशासन के मुख्य मुद्दों में 'सहायकता का सिद्धांत' शामिल है, जिसका अर्थ है कि सरकार के निचले स्तरों पर जो सबसे अच्छा किया जा सकता है, उसे उच्च स्तरों पर केंद्रीकृत नहीं किया जाना चाहिए; स्थानीय निकायों को सौंपे गए कार्यों का स्पष्ट चित्रण; नागरिकों के साथ-साथ नागरिक केंद्रित शासन संरचनाओं के लिए वित्तीय शक्तियों और कार्यों का प्रभावी हस्तांतरण और सेवाओं का अभिसरण।

'स्थानीय शासन' पर दूसरे प्रशासनिक सुधार ने इन प्रमुख मुद्दों के समाधान के लिए विभिन्न उपायों का सुझाव दिया है। उदाहरण के लिए - पंचायतों और नगर पालिकाओं को संवैधानिक दर्जा शासन की प्रकृति में एक मौलिक बदलाव के उद्देश्य से है। हालांकि, अतीत के अनुभव से पता चलता है कि निर्वाचित स्थानीय सरकारों की संरचना बनाना और नियमित चुनाव सुनिश्चित करना आवश्यक रूप से प्रभावी स्थानीय सशक्तिकरण की गारंटी नहीं देता है। जबकि पंचायतें, नगरपालिकाएं और नगर पालिकाएं अस्तित्व में आ गई हैं और चुनाव हो रहे हैं, यह हमेशा सत्ता के वास्तविक विकेंद्रीकरण में परिवर्तित नहीं हुआ है क्योंकि संविधान ने अधिकारिता और विचलन की डिग्री के मुद्दे को राज्य विधानमंडल पर छोड़ दिया है। राज्य सरकारें और उनकी नौकरशाही हमेशा स्थानीय सरकारों को प्रभावी रूप से सशक्त बनाने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि वे इसे अपनी शक्ति और पकड़ में कमी के रूप में देखते हैं। यहां तक कि कई राज्यों में जिला योजना समितियों के गठन जैसे अनिवार्य प्रावधानों की भी अनदेखी की गई है। इस प्रकार, प्रभावी स्थानीय सशक्तिकरण के लिए जमीनी स्तर पर समर्पित नौकरशाही वाले राज्य द्वारा पंचायतों और नगर पालिकाओं का अनिवार्य सशक्तिकरण आवश्यक है।

अनुच्छेद 243G के तहत, पंचायतों पर कानून बनाते समय, राज्य विधानमंडलों को इन संस्थानों को ऐसी शक्ति और अधिकार प्रदान करना चाहिए, जो उन्हें स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो। इस प्रकार, पंचायतें 'अपने स्तर पर सरकार' हैं और उनका अपना स्वायत्त क्षेत्राधिकार है।

हालाँकि, समस्या तब उत्पन्न होती है जब हम सरकार को विभिन्न स्तरों पर कार्य करते हुए देखते हैं जिससे अतिव्यापी अधिकार क्षेत्र और स्वायत्तता पैदा होती है। ऐसे मामले में, समान अधिकार क्षेत्र में एक की स्वायत्तता दूसरे की स्वायत्तता के खिलाफ रगड़ सकती है। इस प्रकार, पंचायतों को स्वायत्तता प्रदान करने का अर्थ कुछ गतिविधियों या कार्यों को राज्य सरकारों से वापस लेना और उन्हें स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करना भी होगा। इससे पंचायतों को अपनी शक्ति और कार्यों को करने के लिए राज्य सरकार से स्वतंत्र एक सच्ची स्वतंत्र और स्वायत्त पहचान मिलेगी। पंचायतों और नगर पालिकाओं को क्रमश: अनुच्छेद 243G और 243W के तहत स्व-शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए शक्ति प्रदान की गई है। इसके लिए, उन्हें आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए स्थानीय योजनाएँ तैयार करने और ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियों में सूचीबद्ध योजनाओं सहित योजनाओं को लागू करने और कार्यों को करने का अधिकार दिया जा सकता है। हालांकि, पिछले अनुभव से पता चलता है कि विभिन्न स्तरों पर स्थानीय सरकारों को शक्तियों और जिम्मेदारियों के हस्तांतरण की प्रगति खराब और असमान रही है। इस प्रकार स्थानीय स्तर पर कार्यान्वयन स्थान पर सरकारी एजेंसियों की एक नगर पालिका का कब्जा है जिससे भ्रम, अनावश्यक दोहराव और धन की बर्बादी होती है। इस प्रकार, स्थानीय सरकार के प्रत्येक स्तर के लिए कार्यों का स्पष्ट चित्रण होना चाहिए। कार्यों के अतिव्याप्ति से बचने के लिए संगठनों के पुनर्गठन और विषय-वस्तु कानूनों को तैयार करके इसे लगातार किया जाना चाहिए। 2nd ARC ने 12वीं अनुसूची में पंजीकरण सहित शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य सहित सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों/क्षेत्रीय अस्पतालों, यातायात प्रबंधन और नागरिक पुलिस गतिविधियों, शहरी पर्यावरण प्रबंधन और विरासत और भूमि प्रबंधन पर विषयों को जोड़ने का सुझाव दिया है।

स्थानीय निकाय वित्तीय प्रवाह के लिए अपनी संबंधित राज्य सरकारों पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। स्थानीय सरकारों के लिए आय के प्रमुख स्रोत जैसे कर लगाने और संग्रह करने के उचित तंत्र की कमी के कारण एकत्र की गई संपत्ति। यह स्थानीय निकायों के खजाने को उनकी परिचालन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बेहद अपर्याप्त बनाता है। धन की अपर्याप्तता के कारण नागरिक सुविधाएं प्रदान करने की जिम्मेदारी अपेक्षाओं से कम हो जाती है। इस प्रकार, स्थानीय सरकारों को कर्मचारियों के वेतन सहित उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए अनुदान के माध्यम से धन के आवंटन के लिए अपनी राज्य सरकार की दया पर रहना पड़ता है। इस संबंध में, अनुच्छेद 243एच और 243एक्स राज्य सरकार के लिए कानून द्वारा स्थानीय निकायों को कर, शुल्क आदि लगाने के लिए अधिकृत करने के लिए बाध्य करता है और स्थानीय निकायों को ऐसे करों/शुल्कों को सौंपता है जो राज्य सरकार द्वारा लगाए और एकत्र किए जाते हैं। अनुच्छेद 243I और 243Y के तहत राज्य वित्त आयोग (SFC) शहरी स्थानीय निकायों और विभिन्न पंचायतों के बीच धन के वितरण के सिद्धांतों की सिफारिश करता है। इस प्रकार, पंचायतों और नगर पालिकाओं के लिए वित्तीय संसाधनों के हस्तांतरण के संबंध में राज्य वित्त आयोग की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। हालाँकि, स्थानीय निकायों को वित्त का हस्तांतरण प्रत्येक राज्य द्वारा उत्पन्न राजस्व पर निर्भर करता है जो कभी भी समान नहीं होता है।

जबकि कुछ राज्यों ने सभी राजस्व को पूल करने और फिर साझा करने की अवधारणा का पालन किया है, अन्य विभिन्न करों के लिए अंतरण के विभिन्न प्रतिशत का पालन करते हैं। इस प्रकार, करों के विचलन के सिद्धांतों के अलावा, यहां तक कि प्रत्येक राज्य के राजकोषीय प्रशासन में भी सुधार की आवश्यकता है क्योंकि इसमें स्थानीय स्तर पर कर लगाना और एकत्र करना शामिल है। राज्य सरकारें आमतौर पर एसएफसी की रिपोर्ट को लागू करने में लंबा समय लेती हैं जिससे धन के हस्तांतरण की प्रक्रिया में और देरी होती है।

शहरी और ग्रामीण स्थानीय निकायों में क्षमता निर्माण का महत्वपूर्ण मुद्दा विकेंद्रीकृत स्वशासन में बड़े पैमाने पर उपेक्षित क्षेत्र बना हुआ है। कर्मियों के प्रशिक्षण की कमी के परिणामस्वरूप पंचायत और नगरपालिका संस्थानों के भीतर क्षमता की कमी हुई है। इस प्रकार, क्षमता निर्माण के लिए एक उचित अभ्यास करने की आवश्यकता है जिसमें विभिन्न योजनाओं के माध्यम से संगठनात्मक विकास के साथ-साथ व्यक्तिगत विकास भी शामिल है। व्यक्तिगत विकास में मानव संसाधन का विकास शामिल है जिसमें व्यक्ति के ज्ञान, कौशल और सूचना तक पहुंच में वृद्धि शामिल है।

यह उन्हें अपने प्रदर्शन और अपने संगठन के प्रदर्शन में सुधार करने में सक्षम बनाता है। राज्य सरकार को विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता वाले समग्र प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना चाहिए। यह वित्तीय प्रबंधन, ग्रामीण विकास, आपदा प्रबंधन और सामान्य प्रबंधन आदि जैसे विभिन्न विषयों से संबंधित संस्थानों की 'नेटवर्किंग' द्वारा सर्वोत्तम रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

जमीनी स्तर पर स्थानीय निकायों को सशक्त बनाना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्थानीय स्तर पर लोग शामिल होते हैं

जो लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को मजबूत करने में मदद करते हैं। हालांकि, स्थानीय निकायों के कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए, उन्हें अपने कामकाज में स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। निचले स्तर पर समर्पित नौकरशाही के साथ प्रशासनिक, विधायी और वित्तीय स्वायत्तता वाले स्थानीय निकाय महात्मा गांधी के सपने को साकार करने में मदद करेंगे। "असंख्य गाँवों से बनी इस संरचना में, कभी चौड़ा नहीं होगा, कभी आरोही वृत्त नहीं होगा। जीवन एक पिरामिड नहीं होगा जिसका शिखर नीचे से टिका हुआ हो। लेकिन, यह और महासागरीय चक्र होगा, जिसका केंद्र व्यक्ति होगा, हमेशा गाँव के लिए नाश के लिए तैयार, बाद वाला गाँवों के चक्र के लिए नष्ट होने के लिए तैयार, जब तक कि पूरा एक व्यक्ति से बना जीवन नहीं बन जाता, कभी आक्रामक नहीं उनका अहंकार, लेकिन हमेशा विनम्र, महासागरीय चक्र की महिमा को साझा करना जिसमें वे एकीकृत इकाइयाँ हैं। इसलिए, सबसे बाहरी परिधि आंतरिक चक्र को कुचलने के लिए शक्ति का उपयोग नहीं करेगी, बल्कि सभी को ताकत देगी और इससे अपनी ताकत प्राप्त करेगी" - महात्मा गांधी।